केदारनाथ आपदा
की सच्ची कहानियाँ

केदारनाथ आपदा
की सच्ची कहानियाँ

रमेश पोखरियाल ‘निशंक’

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

सर्वाधिकार • सुरक्षित

संस्करण • प्रथम, 2014
मूल्य • दो सौ रुपए
मुद्रक • भानु प्रिंटर्स, दिल्ली

KEDARNATH AAPDA KI SACHCHI KAHANIYAN
by Ramesh Pokhariyal 'Nishank' Rs. 200.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com ISBN 978-93-5048-870-6

केदारनाथ आपदा से प्रभावित
हजारों-हजार लोगों को समर्पित
जिन्होंने
इस त्रासदी को झेला,
पर हार नहीं मानी
और फिर उठकर खड़े हुए।
साथ ही इस विभीषिका में
प्राण गँवानेवाले दिवंगतों की
पावन-स्मृति को नमन!

दो शब्द

दैवीय आपदा पर किसी का वश नहीं चलता। हमें न तो उसके आने का अंदाज होता है और न ही उससे होने वाली क्षति का अनुमान। यही आपदा क्या से क्या कर जाती है, उसकी कल्पना मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हम लाख प्रयत्न करें तो भी हम उसे आने से नहीं रोक सकते। हाँ, यदि हम आपदा के प्रति सचेत रहें तो उसकी क्षति का न्यूनीकरण अवश्य कर सकते हैं या उचित प्रबंधन के द्वारा उसका विनाशकारी प्रभाव कुछ कम कर सकते हैं।

उत्तराखंड का यह हिमालयी क्षेत्र अत्यंत संवेदनशील है, न केवल आपदा की दृष्टि से अपितु अन्य अनेक कारणों से भी। इसकी वजह इस क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिक संरचना और बेहद संवेदनशीलता है।

उत्तराखंड हमेशा ही आपदा के प्रति सजग रहा है। फिर भी यहाँ पर कभी भूकंप तो कभी बाढ़ और अतिवृष्टि, तो कभी भूस्खलन और कभी आसमानी बिजली गिरने से या बादलों के फटने से जनजीवन हमेशा ही प्रभावित होता रहा है। बावजूद इसके यहाँ के निवासियों की ईश्वर और उसकी सत्ता के प्रति अगाध श्रद्धा रही है। यहाँ के तपस्वी जनमानस ने हमेशा ही आपदाओं का डटकर मुकाबला किया है।

गत वर्ष उत्तराखंड के केदारनाथ सहित अन्य जगहों पर

अतिवृष्टि के कारण आई भीषण आपदा ने उत्तराखंड की केदारघाटी को पूरी तरह तबाह कर पूरे विश्व के मानस को झकझोरकर रख दिया। देश-विदेश के हजारों-हजार श्रद्धालुओं को इस आपदा में अपनी जान गँवानी पड़ी। परिवार-के-परिवार इसके शिकार हो गए, कई परिवारों का तो एक भी सदस्य जीवित नहीं रहा।

सिर्फ केदारनाथ ही नहीं अपितु बदरीनाथ, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, हेमकुंड साहिब सहित उत्तराखंड के अनेक स्थानों पर भारी तबाही हुई। शायद चारधाम की यात्रा के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ होगा, जब एक साथ चारों धामों के रास्ते बुरी तरह तहस-नहस होकर महीनों तक के लिए बंद हो गए; किंतु केदारनाथ में जन और धन दोनों की भारी क्षति हुई, जिसकी भरपाई शायद कभी भी नहीं हो पाएगी।

मैंने इस आपदा को बहुत करीब से देखा, शायद केदारनाथ में आपदा आने के बाद वहाँ पहुँचने वाला मैं ही पहला व्यक्ति रहा हूँगा। केदारनाथ से ही सबसे पहले देश के प्रधानमंत्री तथा प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री को हजारों लोगों के हताहत होने की जानकारी दी तथा सेना एवं वायु सेना और एन.डी.आर.एफ. की टीमों को तत्काल भेजने का आग्रह भी किया, ताकि बचे हुए, दलदल तथा पहाड़ियों पर फँसे हुए लोगों को निकालकर उनके प्राणों की रक्षा की जा सके। मैंने अपनी आँखों से वह मंजर देखा है, जिसे कोई व्यक्ति सपने में भी देखने की कल्पना नहीं कर सकता। जान बचाने के लिए मैंने वहाँ लोगों को दौड़ते, चीखते, चिल्लाते हुए देखा है। यत्र-तत्र लाशों का अंबार लगा हुआ था; अपनों को अपने सामने ही काल का ग्रास बनते देख लुटे और ठगे से लोगों के करुण क्रंदन और विलाप ने मुझे अंदर तक हिलाकर रख दिया था। विश्वास नहीं हो रहा था कि यह सत्य है। सारा दृश्य

जैसे किसी सपने के समान था। उसके पश्चात् भी मैं तीन बार आपदाग्रस्त क्षेत्र में गया हूँ और श्मशान बन चुके केदारनाथ धाम की पैदल यात्रा भी की है।

मैंने जो कुछ वहाँ देखा और लोगों से मिलकर जाना, उन्हीं घटनाओं को इस पुस्तक की कहानियों का विषय बनाया है। एक प्रकार से ये केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ हैं, किंतु अपरिहार्य कारणों से कहीं-कहीं पात्रों और उनके निवास-स्थान के नाम बदले हैं।

आपदा को आए पूरा एक वर्ष बीत गया है। जिंदगी रुकती नहीं है, इसलिए आपदा पीड़ितों ने भी किसी तरह से खुद को सँभालकर नए ढंग से जीवन की शुरुआत कर दी है। हालाँकि उन अपनों की यादें, जो इस आपदा में सदा के लिए बिछुड़ गए हैं, भुलाई नहीं जा सकतीं।

इस आपदा में मानवीयता के कई उजले तो कई श्याम पक्ष भी सामने आए हैं। कुछेक घटनाओं को छोड़कर इस आपदा के पश्चात् मानवीयता एकजुट दिखी। सिर्फ भारत के कोने-कोने से नहीं वरन् विदेशों से भी लोगों ने आपदा पीड़ितों की मदद के लिए अपने हाथ आगे बढ़ाए और खुलकर तन-मन-धन से मदद की।

मैं अपनी यह पुस्तक आपदा के पीड़ित उन लोगों को ही समर्पित करता हूँ, जिन्होंने इतने बड़े संघात सहने के पश्चात् भी जीवन से हार नहीं मानी। इस आपदा में हताहत हुए सभी मृतकों को भी मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—रमेश पोखरियाल 'निशंक'

अनुक्रम

दो शब्द *7*

1. और मैं कुछ नहीं कर सका 13
2. वो देख रहा है··· 21
3. मुआवजा 28
4. अपने ही जाल में 34
5. पानी और पानी 38
6. लौट आया हूँ 46
7. सब उसका है··· 53
8. सब एक जैसे नहीं होते 58
9. घर वापसी 72
10. जिंदगी रुकती नहीं 77
11. नोटिस 83
12. जिंदा हूँ किसी और के लिए 88
13. पीड़ा से भी ऊपर 94
14. अनजान 99
15. इक रिश्ता दिल का 103

16. तलाश अपनों की 113
17. कितना खुद्दार 119
18. लौटकर आएगा 125
19. रिश्तों का भ्रमजाल 130
20. झगड़े का समाधान 135
21. भीड़ के बीच 140

और मैं कुछ नहीं कर सका

‘‘पापा, पापा! एक जुलाई को मेरा स्कूल खुलना है। मुझे अगले महीने नया बस्ता और नई कॉफी-किताबें जरूर ले आना।’’ मचलती हुई छह वर्षीय रेनू ने दयाल से कहा।

‘‘हाँ बेटी, जरूर लाऊँगा, वह भी स्कूल खुलने के पंद्रह दिन पहले, ताकि मेरी रानी बेटी पहले ही सारी किताबें रट ले।’’ दयाल ने उसे गोदी में उठाकर चूम लिया।

‘‘पापा, पंद्रह दिन पहले…’’ कुछ सोचती हुई रेनू बोली, ‘‘पापा, आप कितनी तारीख को आओगे?’’

‘‘बेटा, सोलह जून को मैं तेरा बस्ता और किताबें लेकर घर आऊँगा…समझी मेरी राजकुमारी!’’

‘‘हाँ पापा, समझ गई, लेकिन भूलना मत! मैं इंतजार करूँगी।’’ पापा के गले में अपनी नन्ही बाँहें झुलाते हुए रेनू बोली।

‘‘मैं वादा करता हूँ रेनू, सोलह तारीख को तेरा बस्ता लेकर आऊँगा।’’ पापा-बिटिया की बातें चल ही रही थीं कि अंदर से दयाल की माँ रोली-अक्षत की थाली में धूपबत्ती जलाकर ले आईं।

माँ ने सबसे पहले डब्बू का टीका किया, फिर दयाल का। दयाल ने माँ के पैर छूकर आशीर्वाद लिया। माँ ने दयाल के सिर पर हाथ रखकर कहा, ‘‘जा बेटा, राजी-खुशी रहना। अपने शरीर का ध्यान रखना और टैम पर खाना खा लेना,’’ फिर डब्बू का माथा

चूमकर उसे भी आशीष दिया और सिर सहलाकर दयाल की ओर इशारा करके कहा, ''डब्बू का विशेष ध्यान रखना। इसकी साफ-सफाई, खाने-पीने में कमी मत करना। यह अगर जरा भी कमजोर हुआ तो फिर···।'' इतने में दयाल की पत्नी सुशीला ने कहा, ''डब्बू को बड़े नाजों से पाला है। बेटा है ये इस घर का। इसलिए तुम भी बेटे जैसा ही रखना इसको।'' सुशीला ने डब्बू के सिर पर हाथ फेरा और उसके गले में बँधे पट्टे में झूल रहे खाँकरों और घंटियों की आवाज से वातावरण में मधुर ध्वनि फैल गई। आज डब्बू की आँखों में खासी चमक व मुख पर तेज था, वह उत्साहित था।

''डब्बू, तू इनको लेकर जल्दी आना और रेनू का बस्ता, कॉपी-किताब जरूर ले आना।'' सुशीला ने कहा तो डब्बू से, लेकिन अप्रत्यक्ष में सुनाया पति को।

''हाँ बोल दे डब्बू! आ जाएँगे जल्दी।'' दयाल ने भी उसी अंदाज में कहा तो सुशीला मुसकरा दी।

दयाल ने फिर माँ के पैर छुए, फिर घुटनों के बल बैठकर रेनू का माथा चूमा और उसके गाल सहलाए। सुशीला की ओर प्यार भरी दृष्टि से देखकर डब्बू से बोला, ''चल डब्बू।'' और फिर दोनों चल पड़े अपने गंतव्य की ओर।

कमर में मखमली कंबल और उसके ऊपर कसी काठी के साथ डब्बू इस बार की यात्रा के लिए दयाल के साथ जाने को खूब सजा-धजा था।

इस परिवार के साथ पिछले चार वर्षों से था डब्बू। चार यात्राएँ की थीं उसने दयाल के साथ। वह सिर्फ घोड़ा नहीं था, बल्कि इस परिवार का एक सदस्य ही था। दयाल उसे अपना बेटा मानता था। आखिर उसकी मेहनत से ही तो दयाल का घर-परिवार चलता था। संवेदनाएँ उसके अंदर कूट-कूटकर भरी थीं, सिर्फ आवाज ही तो

नहीं है उसके अंदर। यात्रा सीजन में दोनों खूब मेहनत करते। यात्रा शुरू होते ही वे गाँव से निकल जाते और पूरे छह माह तक उनका ठिकाना गौरीकुंड में रहता, लेकिन हर महीने एक बार जरूर घर आते, वह भी सिर्फ एक रात के लिए।

सुबह ही दयाल डब्बू को काठी कसकर तैयार कर लेता और घोड़ा स्टैंड पर खड़ा हो जाता। डब्बू का सुंदर चिकना शरीर और अच्छी सेहत देखकर उसे ग्राहक भी तुरंत मिल जाता। मस्ती के साथ डब्बू केदार की चढ़ाई पर आगे-आगे चलता और पीछे-पीछे हाथ में बारीक सी छड़ी लिये दयाल 'हो, हो, ऊबो-ऊबो, चल-चल' कहते हुए उसी गति से उसके पीछे बढ़ता। दिन भर में दो चक्कर मार लेता था डब्बू। पहले चक्कर में वापस आकर दयाल तो थक जाता, किंतु डब्बू फिर भी तनकर खड़ा रहता। दयाल उसके मुँह में चनों से भरा थैला लगाकर उसके गले में लटका देता और खुद चाय व बंद खाता। एक और चक्कर मारने के बाद दोनों गौरीकुंड में ही रुक जाते। दयाल रघु लाला के बरामदे में अपना बिस्तर डालता और ठीक सामने सड़क पार डब्बू का पैर खूँटी से बँधी रस्सी में बाँध देता। दिन भर में दो चक्कर मारकर बारह सौ रुपए दयाल के हाथ में आते, जिसमें वह दो सौ रुपए अपने और डब्बू के खाने में खर्च करता। बाकी के हजार रुपए वह रघु लाला के पास जमा करा देता, जिनको वह महीने-दो महीने में गाँव जाते समय ले लेता।

मई का पूरा महीना अच्छा गुजर गया। जून में यात्रा पूरे चरम पर है, लेकिन दयाल को अच्छी तरह याद है कि उसे रेनू के लिए नया बस्ता और नई किताबें लेकर घर जाना है। वह भी स्कूल खुलने से पंद्रह दिन पहले, उसने वायदा किया था बेटी से। एक जुलाई को उसका स्कूल खुलना है। इस हिसाब से पंद्रह दिन ही तो बच गए हैं आज।

सोलह जून को उसने एक चक्कर केदारनाथ का लगाया, फिर गौरीकुंड पहुँचकर डब्बू को खूँटी से बाँधकर बाजार में सामान लेने चला गया।

''क्यों दयाल, आज दुबारा केदार नहीं गया?'' उसके एक साथी ने पूछा।

''नहीं यार! आज गाँव जाने का विचार है।'' दयाल ने उत्साहित भाव में कहा। रेनू के लिए नए कपड़े, बस्ता, किताबें खरीदते समय दयाल बहुत उत्साहित नजर आ रहा था। यह उत्साह शायद इस बात का था कि इस बार की यात्रा में आने के बाद यह पहला मौका था घर जाने का और सुकून इस बात का कि वह बेटी से किए गए वादे को निभाने जा रहा था। कितनी खुश होगी रेनू इन सबको देखकर। यह खयाल मन में हिलोरें लेने लगा तो दयाल के चेहरे पर मुसकराहट स्वत: ही आ गई। पत्नी सुशीला के लिए चूड़ी और कपड़े, माँ के लिए धोती और केदारनाथ से प्रसाद-स्वरूप रुद्राक्ष की माला लेकर वह डब्बू के पास आ गया। सामान का थैला देख डब्बू भी खुशी में हिनहिनाने लगा। वह भी बेचैन था घर जाने के लिए, आखिर हो भी क्यों न? रेनू की खिलखिलाती हँसी, उसके साथ खेलना, सुशीला के हाथों से नहाते वक्त सिंकाई करना, माँ के हाथों से खाना—सब डब्बू के मानस-पटल पर घूम रहा था और यही सब बातें उसे घर जाने के लिए बेचैन कर रही थीं।

दयाल ने घर का सारा सामान थैलों में बाँधकर अच्छी तरह से काठी पर कस दिया। अपनी कमाई के जो पैसे वह रघु लाला के पास जमा करता था, उन्हें लेने के लिए जैसे ही बाहर आया, उसने देखा, पूरा आकाश काले बादलों से घिर आया, बिजली की चमक, बादलों की गर्जना से पूरी केदारघाटी डरावनी लगने लगी। दयाल ने सोचा, जब तक बारिश शुरू होती है, वह जल्दी से पैसे लेकर घर

के लिए रवाना हो जाएगा। डब्बू से इंतजार करने को कहकर वह तेज कदमों से रघु लाला के पास गया और अपने जमा पैसे लेकर लौट रहा था कि भारी बारिश शुरू हो गई। दयाल के कदमों की गति भी तेज हो गई। डब्बू और दयाल के बीच बस कुछ कदमों का ही फासला रहा होगा कि अचानक ऊपर से तेजी से पानी के साथ आए मलबे ने दयाल और डब्बू के बीच गहरी खाई बना दी और उसमें पानी इतने तीव्र प्रवाह में था कि पार कर पाना मुश्किल ही नहीं, असंभव भी हो गया। डब्बू छटपटाने लगा कि कैसे वह दयाल को बचाए। दयाल भी अपने आपको बचाने के साथ-साथ डब्बू को अपना खयाल रखने की हिदायतें भी दे रहा था।

डब्बू खूँटी से बँधे अपने पैर को खोलने के लिए पूरी ताकत लगा रहा था। इसके लिए नहीं कि अपनी जान बचाए बल्कि वह इसलिए छटपटा रहा था कि किसी तरह दयाल की जान बचे। वह एक क्षण दयाल की ओर देखता, दूसरे क्षण खुद को आजाद करने की मशक्कत करता, पूरी ताकत के साथ जब वह अपनी खूँटी से छूटा और दयाल को बचाने के लिए दौड़ा, लेकिन यह क्या? क्या हो रहा था? जहाँ देखो, वहाँ पानी-पत्थर, मलबा, गाड़-गदेरों के प्रचंड प्रवाह में तबाही का मंजर नजर आ रहा था। डब्बू अपने मालिक को ढूँढ़ रहा था कि कहीं नजर आए और वह उसको बचा सके, तभी दूर कहीं एक पत्थर पर दयाल ''बचाओ डब्बू''कहाँ हो तुम?'' आवाजें दे रहा था। डब्बू भी अपने मालिक को बचाने के लिए जैसे ही पानी में गया, उसने देखा कि एक बड़ा पत्थर दयाल के सिर पर गिरा। 'डब्बू''बू''बू''बू''' एक जोर की चीख दयाल के मुँह से निकली। दयाल की ये आखिरी चीख थी। इसके बाद उस पत्थर के साथ लुढ़कता हुआ सदा के लिए मलबे के आगोश में समा गया।

डब्बू सब देखता रह गया। चाहकर भी कुछ न कर सका। अब

उसे जीने का मन नहीं था, वह रोया…जोर-जोर से रोया, इधर दौड़ा …उधर दौड़ा…चीखा-चिल्लाया। रह-रहकर वह अपनी बात कहना चाह रहा था, पर उसको सुननेवाला कोई न था; अगर शायद कोई होता भी तो भी उसकी ओर कोई ध्यान न देता, क्योंकि वह एक पशु था, बेजुबान पशु, जो समझता सबकुछ था, पर कह नहीं सकता था। जो रो तो सकता था, पर उसके दर्द को कोई नहीं समझ सकता था। आज डब्बू के सिर से पिता का साया उठ गया था। दयाल को न बचा पाने और उसकी दर्दनाक मौत की टीस ने डब्बू को पूरी तरह झकझोर दिया था। उसका मन रह-रहकर उसको धिक्कार रहा था कि दयाल ने उसे अपना बेटा माना और आज बेटे ने चाहकर भी अपना फर्ज नहीं निभाया। अब डब्बू जीना नहीं चाहता था, वह जोर-जोर से हिनहिनाकर मानो कह रहा था—बहा ले जाओ मुझे भी, इस दुनिया से उठा लो मुझे, मेरे जीने का अब कोई सहारा नहीं है।

इधर-उधर दौड़कर और खुद को झंझोड़कर डब्बू की काठी थोड़ी ढीली पड़ने लगी, बरबस ही डब्बू का ध्यान अपनी काठी पर बँधे सामान की ओर गया, उस गठरी में बँधे सामान के साथ दयाल के हाथों की कसावट और उत्साहित मन यहीं छूट गया था। तभी डब्बू की अंतरात्मा से आवाज आई, 'डब्बू! दयाल ने तुझे अपना बेटा कहा और आज सही मायने में तुझे बेटे का धर्म निभाना है।' दयाल का रेनू से किया वादा अब दयाल की जगह तुझे निभाना है। एक बार उसने उस जगह को देखा, जहाँ उसने दयाल को अंतिम बार देखा था, उसके बाद दयाल के चेहरे का स्मरण करके भारी मन से घर की ओर चल दिया, स्वामी के वादे को निभाने, जो कि आज ही पूरा करना था।

उधर गाँव में माँ व्याकुल हुई जा रही थी, पिछले दिन से लगातार हो रही बारिश ने उसे बेचैन कर दिया था। उड़ते-उड़ते यह

खबर भी गाँव में पहुँच गई कि रामबाड़ा और केदार में भारी नुकसान हो गया है।

''सुना है रामबाड़ा और केदार में बहुत लोग बह गए। भगवान् मेरे दयाल को राजी-खुशी रखना।'' खबर सुनकर माँ चिंतित हो उठी थी।

''माँ, पापा कब आएँगे? मेरी कॉपी-किताब, बस्ता…?'' रेनू माँ से बोली।

''आ जाएँगे बेटी, जब बारिश बंद होगी।'' सुशीला ने रेनू को पुचकारा।

तभी घंटियों और खाँकरों की आवाज सुनाई पड़ी और डब्बू बोझिल कदमों से आँगन में आ पहुँचा।

''पापा आ गए! पापा आ गए!'' कहती हुई रेनू डब्बू के गले से झूलता अपना बस्ता दौड़कर अंदर ले आई।

''हे ब्वारी, देख तो दयाल आ गया।'' सुशीला बाहर गई तो देखा कि अन्य दिनों की तरह डब्बू तनकर सीधा खड़ा होकर नहीं हिनहिनाया। उसने अपनी गरदन झुकाकर दोनों अगली टाँगों के अंदर फँसा रखी थीं। सुशीला को उसकी यह मुद्रा बड़ी अजीब लगी। मानो वह माफी माँग रहा हो। ऐसा वह तब करता था, जब किसी बात पर दयाल उसे डाँटता था।

''क्या हुआ डब्बू?'' कुछ आशंकित होकर उसने पूछा।

कैसे बताता डब्बू? आवाज होती तो बताता। सुशीला चीख मारकर डब्बू को झिंझोड़ते हुए बोली, ''बताता क्यों नहीं? कहाँ हैं ये?''

डब्बू अपराध-बोध सा महसूस किए हुए रोता रहा। उसकी आँखों से बहते अश्रुओं ने सुशीला को उसकी अनकही भाषा समझा दी।

''हे जीई…ई…ई…ई…'' वह जोर से चीखी, ''हे भगवान्! यह

क्या हो गया? हमें छोड़कर कहाँ चले गए तुम?'' न जाने क्या-क्या कहते हुए सुशीला बेहोश हो गई। सास देहरी तक पहुँची कि बाहर का मंजर देख गश खाकर गिर पड़ी।

''दयाल कहाँ गया तू...।'' इतने में गाँव के ज्यादातर लोग जुटने लगे। कोई सुशीला को पानी के छींटे मार रहा, तो कोई दयाल की माँ को सांत्वना दे रहा था। इस भीड़ में अगर कोई अकेला था तो वह डब्बू, जिसे जानवर कहकर कोई यह भी नहीं जानना चाह रहा था कि वह ठीक है भी कि नहीं, बस एक कोने में खड़ा अपनी संवेदनाओं को आँसुओं के रूप में ही व्यक्त कर रहा था और मन-ही-मन दु:ख का घूँट पिए जा रहा था। कुछ देर बाद अंदर के कमरे से आवाज आई–

''अ से अनार, आ से आम, इ से इमली, ई से ईख...।''

□

वो देख रहा है…

इतने पैसे तो उसने अपने सामने में क्या, सपने में भी कभी नहीं देखे थे। कितने होंगे, यह तो पता नहीं, लेकिन होंगे तो लाख से ऊपर ही।

''भइया! आप यह सब पैसा ले लो, लेकिन मुझे और मेरे पति को कहीं सुरक्षित पहुँचा दो।'' वह महिला बार-बार लखन को झिंझोड़ रही थी। पुरुष घुटनों के बीच सिर छुपाए पगडंडी की पहाड़ी से सटा हुआ बैठा था। एकदम चुपचाप!

''भइया प्लीज… प्लीज! हमारी मदद करो। इनको दिल की बीमारी है। हम पर रहम करो।'' महिला रोए-गिड़गिड़ाए जा रही थी।

केदारनाथ में आई जल-प्रलय के बाद जान बचाने के लिए पहाड़ी पर चढ़ गए दोनों गुजराती पति-पत्नी सबसे अलग-थलग पड़ गए थे। आपदा में अपनी जान बचाकर लखन भी उसी पहाड़ी पर चढ़ गया था। कंडी उसने छोड़ी नहीं थी। छोड़ता कैसे, यह उसे अपनी जान से भी प्यारी थी। इसी के बलबूते तो पिछले इतने सालों से वह अपना घर-परिवार पाल रहा था।

गौरी गाँव का लखन पिछले कई सालों से गौरीकुंड से केदार तक की दूरी नाप रहा था। यात्रा पर आए कितने बाल-वृद्ध, अशक्त महिलाओं या पुरुषों को उसने कंडी में बैठा अपनी पीठ पर लादकर

केदारनाथ की चढ़ाई चढ़ी, उसे खुद भी याद नहीं।

बचपन से ही माँ-बाप का साया सिर से उठ गया था, आठ साल का रहा होगा तब। लोगों के दिए टुकड़ों पर पलकर उसने जवानी की दहलीज में कदम रखा तो गौरीकुंड उतर आया। दो-तीन वर्षों तक वहाँ पर एक होटल में नौकरी करता रहा। जीवन जीने की जिजीविषा उसे कचोटती रही, लेकिन क्या कर सकता था। न पैसा था, न कोई अपना-पराया। होटल से मिलनेवाली चार सौ रुपए की पगार से एक-एक पैसा बचाकर एक दिन उसने अपने लिए कंडी खरीद ली।

पहली बार कंडी में साठ वर्षीय भारी-भरकम बुजुर्ग को अपनी पीठ पर उठाकर उसने केदारनाथ की चढ़ाई चढ़ी तो वह पसीना-पसीना हो गया था।

''हे केदार बाबा! मुझे ताकत देना। मुझे इतनी ताकत देना कि मैं रोज तेरे दरबार में आ सकूँ।'' उसने आज खुद भी पहली बार केदार बाबा के दर्शन किए थे।

केदार बाबा ने उसे ताकत दी। केदार बाबा की दी हुई ताकत ही उसके हौसलों की ताकत बन गई। तब से वह रोज कंडी में लदे मनुष्य को ढोकर केदारनाथ की चढ़ाई चढ़ता है। जिस चढ़ाई पर पैदल यात्री तो क्या घोड़े-खच्चर भी हाँफ जाते हैं, वह उसको भारी-भरकम मानवीय शरीर के बोझ के साथ चढ़ता-उतरता है। बदन टूट जाता है, लेकिन मन में आत्मिक शांति की अनुभूति होती है उसे।

यात्री की स्थिति, उम्र और वजन के अनुसार ही चढ़ने-उतरने का किराया तय होता है। तीन सौ से लेकर आठ सौ तक भी मिल जाता है। कभी-कभी पैसे मिलने से अधिक उसे इस बात की खुशी मिलती कि उसने एक अशक्त और लाचार व्यक्ति को भगवान्

केदार की यात्रा कराई। उसे लगता कि यह केदार बाबा की सेवा ही है, पैसा तो एक माध्यम है, जो उसे जीवन को जीने के लिए चाहिए।

वह भी मनुष्य ही तो है। ऐसे तो घोड़े-खच्चर भी अपनी पीठ पर ढोकर यात्रियों को केदार की यात्रा करवा रहे हैं, लेकिन उसकी संवेदनाएँ कुछ अलग हैं। मनुष्य के अंदर अच्छाई भी है तो बुराई भी। जानवर को अच्छाई और बुराई की समझ बहुत कम होती है। यदि होती भी है तो भेद करने के बावजूद वह अपनी संवेदनाओं को नियंत्रित नहीं कर पाता। वह जानकर भी अच्छाई को बुराई में बदल देता है और कभी अनजाने में ही अच्छाई कर देता है।

मनुष्य के भी तो दो मन हैं। दोनों मन को एक मस्तिष्क संचालित करता है। कभी-कभी बुरा मन मनुष्य पर भारी पड़ता है तो वह विचलित हो उठता है।

लखन भी कभी-कभी विचलित हो उठता है, यात्रा पर आए हुए लोगों के ठाट-बाट और मोटरगाड़ी देखकर। कितना पैसा है लोगों के पास! कहाँ से आता है इनके पास इतना पैसा! कितना आरामदायक जीवन है इनका! क्या उसके नसीब में कंडी में आदमी ढोना ही लिखा हुआ है। वह सोचता, वास्तव में पैसा ही सबसे बड़ा नसीब होता है, वह सबकुछ करवा सकता है।

लेकिन आज अपने सामने लाखों रुपए से भरे बैग को दिखलाती, रोती- विलखती इस महिला को देखकर उसे लगा कि पैसा कुछ भी नहीं है। पैसा कुछ भी नहीं कर सकता, पैसा किसी की जान नहीं बचा सकता। यदि बचा सकता तो यह महिला इस समय मेरे आगे क्यों गिड़गिड़ाती? इसका पति इस तरह लाचार क्यों रहता?

लेकिन बुरा मन और हावी होता चला गया लखन के ऊपर।

बुरा मन कभी अच्छा करने की प्रेरणा नहीं देता। ‘इनकी मदद के बदले यदि यह लाखों रुपया मुझे मिल जाए तो जिंदगी भर का आराम हो जाएगा। अभी तो बड़ी कठिनाई से पत्नी का पालन-पोषण ही होता है, कल बच्चे होंगे तो कैसे चलेगा।’ लखन के मन में लालच ने प्रवेश किया।

इस घने जंगल की निर्जन पगडंडी में आज उसके लिए नए रास्ते खुल सकते हैं। उसने रोती-गिड़गिड़ाती महिला पर नजर फेरी। कितनी सुंदर है, गदराई हुई। तीखे नैन-नक्श और एकदम गोरी-चिट्टी। पहली बार शायद उसने किसी महिला की सुंदरता का अहसास किया होगा। फिर उसने पुरुष पर नजर फेंकी, लुंज-पुंज और असहाय सा। और आखिर में उसकी निगाहें रुपयों से भरे बैग पर टिक गईं।

“भइया प्लीज! हमें बचा लो। भगवान् केदार आपकी मदद करेंगे।” महिला लगातार गिड़गिड़ाए जा रही थी।

उसने मन-ही-मन कुछ निश्चय कर लिया। पुरुष को कंडी में बैठाया और अपनी पीठ पर लाद लिया। महिला का हाथ अपने हाथ में थामकर जंगल की ऊँची-नीची घुमावदार पगडंडी पर चलने लगा।

इस समय कौन देख रहा है, यदि इस पुरुष को पहाड़ी से नीचे लुढ़का दूँ…यह खूबसूरत महिला…एकदम अकेली…रुपयों से भरा बैग…कौन देख रहा है? कोई नहीं देख रहा होगा। मन में थोड़ा सा लालच क्या घुसा कि अब उसने मन पर पूरा कब्जा ही कर लिया। वासना अलग से जाग्रत् हो उठी।

इतना सारा रुपया! लखन को तो इतनी गिनती भी नहीं आती। जीवन सुधर जाएगा उसका। जीवन भर कंडी ढो-ढोकर तो वह इतना रुपया कभी एक साथ देख भी नहीं सकता, यों ही समाप्त हो

जाएगा उसका जीवन। कल फिर उसके बच्चे भी उसी की तरह कंडी ढोएँगे। नहीं-नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। आज मेरे सामने अवसर आया है कि मुझे कैसा जीवन चाहिए-आरामदायक या घोड़े-खच्चरोंवाला?

विचारों के भँवर-जाल में उलझे लखन के माथे पर कड़ाके की ठंड में भी पसीना उभर आया। साथ चल रही महिला के गोरे और गुदगुदे हाथ से उसे गरमी के साथ ही एक अजीब तरह की अनुभूति हो रही थी।

पहाड़ी के अगले मोड़ से इस आदमी को कंडी समेत नीचे लुढ़का दूँगा। फिर···यह सुंदर, खूबसूरत औरत···बाद में इसे भी धक्का दे दूँगा। सारे रुपए अपने हो जाएँगे। सबसे पहले तो एक घोड़ा खरीदूँगा। उसको चलाने के लिए नौकर रखूँगा। बरसात में घर कई जगह से टपक रहा है, उसकी मरम्मत कराऊँगा। सुंदरी एक ही धोती-ब्लाउज को धो-निचोड़कर पहनती है, उसके लिए धोती नहीं बल्कि दो अच्छी साड़ी-ब्लाउज खरीदूँगा। इसके बावजूद काफी रुपया बच जाएगा, फिर उनसे एक छोटी सी दुकान खोलूँगा और आराम से उसी में बैठकर जीवन गुजारूँगा।

वह पहाड़ी के मोड़ पर खड़ा हो गया। उसने दाएँ-बाएँ देखा, दूर-दूर तक आदमी तो क्या कोई पंछी भी नजर नहीं आ रहा था। पीछे नजर दौड़ाई तो दूर तक पगडंडी सूनी और निर्जन नजर आ रही थी। 'यही अच्छा मौका है, कोई नहीं देख रहा है', उसने सोचा। पूरा बदन पसीना-पसीना हो चला था उसका। भारी-से-भारी आदमी को तपती दोपहरी में केदार की चढ़ाई चढ़ाते वक्त भी ऐसा पसीना नहीं आता था उसे। चारों ओर नजर दौड़ाते ही उसकी नजर भगवान् केदारनाथ के मंदिर पर जाकर अटक गई, साँसें मानो थम सी गईं। लखन को लगा, जैसे उसकी चोरी पकड़ी गई हो।

'केदार··· हाँ, भगवान् केदारनाथ!' केदारनाथ को देखते ही उसके मनोमस्तिष्क को झटका सा लगा। यदि इस समय कोई नहीं देख रहा है तो केदार भगवान् तो देख ही रहा होगा, लेकिन भगवान् है कहाँ? क्या दिया भगवान् ने मुझे आज तक? यह जानवरों जैसा जीवन? माँ-बाप को बचपन में ही छीन लिया। अब इससे ज्यादा क्या करेगा भगवान्?

'क्या दिया—यह तू पूछ रहा है?' दिल के किसी कोने से आवाज आई। 'जीवन दिया है तुझे भगवान् ने। याद कर, तू कैसे बच गया इस प्रलय में। यदि तू भी हजारों यात्रियों की तरह····।'

नहीं-नहीं, जल-प्रलय के दृश्य की याद आते ही रूह काँप गई लखन की। सचमुच यह भगवान् की ही तो कृपा है कि मैं जीवित हूँ। केदारनाथ देखता है। वह सबकुछ देखता है। उसने महिला की ओर निहारा, वह उसका हाथ थामे निढाल सी उसके बदन से एकदम चिपकी हुई थी। शायद थक गई थी।

तो क्या करे? मार दे धक्का इसे, लुढ़का दे इस आदमी को भी, फिर वही कुविचार मन में आया। उसने सिर झटक दिया।

'नहीं-नहीं···केदार देख रहा है।' मन में आत्मबल और भी जाग्रत् हो गया उसके। वह और तेजी से आगे बढ़ने लगा। कब गौरीगाँव पहुँच गया और कब घर के अंदर, पता ही नहीं चला। ''ऐ सुंदरी! इनको कपड़े दे बदलने के लिए। जल्दी से कुछ खिला-पिला, कल से भूखे हैं। इनका ध्यान रखना, कोई तकलीफ न हो।'' उसने पत्नी को आदेश दिया।

महिला ने रुपयों से भरा बैग उसको देने के लिए बढ़ा दिया, ''भइया, यह सब ले लो।''

''नहीं, मैं इसे नहीं ले सकता···।'' लखन ने संतोष भाव से कहा।

''भइया, आपने मुझे और मेरे पति को नया जीवनदान दिया

है। इसलिए धन्यवाद के रूप में इन्हें रख लीजिए।'' सच्चे मन से कृतज्ञतापूर्वक पैसों को आगे बढ़ाती महिला बोली।

''नहीं बहन, ऐसा मत कहो। सही मायने में आज मैंने इनसानियत को जिया है, जो आत्मिक संतोष मुझे आज मिला है, वह जीवन में पहले कभी नहीं मिला। इन पैसों का क्या है, न जाने कितने कमा लेते हैं और कहाँ समा जाते हैं, हम उस महाप्रलय से सकुशल वापस आए हैं। इससे बढ़कर और कुछ नहीं है, इनसान की जिंदगी के मोल में पैसों का स्थान तुच्छ है; वैसे भी अभी आपको इन पैसों की ज्यादा जरूरत है। अभी आपको अपने घर जाना है···अपनों के पास।'' लखन ने बड़ी ही सहजता से अपनी बात कही।

अपने मुख पर गर्व और सुकून की आभा लिये भगवान् केदारनाथ को मन-ही-मन प्रणाम करके लखन फिर अपनी कंडी उठाकर चल दिया किसी और पीड़ित की मदद के लिए।

□

मुआवजा

उत्तराखंड में आई भीषण आपदा में हजारों की संख्या में लोग हताहत और हजारों लोग लापता हो गए, ऐसा उसने टी.वी. और रेडियो पर सुना। जो लोग मर गए हैं, उनका वहीं सामूहिक दाह-संस्कार किया जाएगा और जो लोग लापता हैं, यदि वे एक माह के अंदर-अंदर घर नहीं पहुँचते तो उन्हें भी मृतक घोषित कर दिया जाएगा। सभी मृतकों के परिवारजनों को सरकार की ओर से छह-छह लाख रुपए मुआवजा दिया जाएगा, ऐसी घोषणा सरकार ने की है।

छह लाख बहुत बड़ी रकम होती है रामदीन जैसे गरीब मजदूर के लिए। उसके लिए तो छह लाख रुपए एक साथ देखना भी स्वप्न जैसा था। मजदूर की जिंदगी सुबह की सूर्य रश्मियों के साथ शुरू होती और दिन भर की कड़ी मेहनत के पश्चात् सायं की रोटी पर आकर थम जाती है। उसका कोई भी भविष्य नहीं होता। हर दिन वह नया जीवन जीता है, उसका केवल वर्तमान होता है।

रामदीन भी उन्हीं लोगों में से एक है। तीन बच्चों का परिवार और ऊपर से महँगाई। किसी तरह से मेहनत-मजदूरी कर संध्या को चूल्हा जलाने की जद्दोजहद में उसे अपने तीनों बच्चों के भविष्य की कोई चिंता नहीं होती थी। चिंता होती थी तो सिर्फ शाम की दाल-रोटी की, जो वह बड़ी मुश्किल से जुटा पाता।

उत्तराखंड की पहाड़ियों में बसे जनपद पिथौरागढ़ के दूरस्थ गाँव से वह रोजी की तलाश में गौरीकुंड चला आया। उसने सुना था कि केदारनाथ यात्रा के समय वहाँ अच्छी मजदूरी मिल जाती है, जिससे छह महीने में ही साल भर के बराबर कमाई हो जाती है। रोज-रोज काम ढूँढ़ने की किचकिच से तंग आकर रामदीन ने केदारनाथ यात्रा में अपनी तकदीर की यात्रा शुरू करने की ठानी। वह गौरीकुंड पहुँच गया। वहाँ एक खच्चरवाले ने उसे दो सौ रुपए प्रतिदिन के हिसाब से काम पर रख लिया।

दो सौ रुपया दिहाड़ी काफी मायने रखती है खा-पीकर रामदीन के लिए। इस तरह से एक महीने में उसके पास छह हजार जमा हो जाएँगे। रामदीन ने हिसाब लगाया, पूरे यात्रा काल में छह माह काम करके यह रकम छत्तीस हजार हो जाएगी।

छत्तीस हजार! बार रे बाप! इतना सारा रुपया लेकर जब वह घर जाएगा तो पत्नी कितनी खुश हो जाएगी! वह बच्चों को अच्छे स्कूल में डालेगा, उनके लिए कपड़े बनवाएगा, पत्नी के लिए धोती-ब्लाउज, चूड़ियाँ और ढेर सारा सामान लेकर जाएगा। तब भी उसके पास काफी पैसा बच जाएगा। फिर वह पूरे छह महीने आराम करेगा और यात्रा शुरू होने पर दुबारा यहीं गौरीकुंड में आ जमेगा। यही सपना देखते हुए रामदीन रोज घोड़े के साथ दो चक्कर केदारधाम के लगाता। अपने सुखद भविष्य के इंद्रधनुषी रंगोंवाले सपनों के साथ वह कब सोलह किलोमीटर यात्रा की लौट-फेर कर देता, उसे मालूम ही नहीं पड़ता।

उसने अपने मालिक से अपने निजी खर्च के लिए कभी पैसे नहीं माँगे। उसका अपना कोई खर्चा था भी नहीं। जूता, कपड़ा, रहना-खाना सब मालिक की तरफ से था, तो उसे नगद की क्या जरूरत थी। पैसा बचा रहेगा तो यात्रा के बाद वह पूरा पैसा लेकर घर जाएगा।

उसने एक यात्रा पूरी कर ली थी। यात्रा पूरी कर जब उसने घर जाने के लिए घोड़ा मालिक सोबत सिंह से अपने छत्तीस हजार रुपए माँगे तो वह कई बहाने करके उसे टरकाने लगा। नंबर एक का कंजूस था सोबत सिंह और धूर्त भी। छत्तीस हजार एक साथ देने की कल्पना मात्र से ही उसकी छाती पर साँप लोटने लगा।

''देख रामदीन! सीजन खत्म हो गया, अब पूरे छह महीने बैठे-बैठे खच्चरों को दाना खिलाना पड़ेगा। तू ऐसा कर ले, फिलहाल इन खच्चरों को चरा देना। खा-पीकर मैं तुझे पचास रुपए रोज दे दूँगा। अगले वर्ष यात्रा शुरू होने पर मैं तेरा हिसाब पूरा कर दूँगा।''

सोबत सिंह ने रामदीन के आगे चारा फेंका।

फिर हिसाब जोड़ा रामदीन ने, दिन के पचास रुपए का मतलब महीने के पंद्रह सौ। इस हिसाब से छह महीने के नौ हजार रुपए। छत्तीस जमा नौ हजार, कुल पैंतालीस हजार रुपए।

फिर सोबत के जाल में फँस गया रामदीन। पूरे छह महीने उसने खच्चर चराए। पत्नी और बच्चों की उसे चिंता सालती, न जाने किस हाल में होंगे वे लोग? कभी मन करता कि भागकर चला जाए यहाँ से, लेकिन पैंतालीस हजार का मोह उसे विवश कर देता। यात्रा दुबारा शुरू हुई तो उसने घर जाने की बात कहकर सोबत को उसका वायदा याद दिलाया।

''देख रामदीन! मेरे पास कुछ नगद तो है नहीं, जो था वह दुकान में लगा दिया। तू ऐसा कर, दो महीने यात्रा चला दे। जितना पैसा आएगा, उसमें तेरा पूरा हिसाब बन जाएगा।'' कुटिल सोबत सिंह ने उसे फिर फँसा दिया। रामदीन सोच में पड़ गया। फिर हिसाब लगाया, दो महीने का मतलब बारह हजार रुपए और आ जाएँगे। कुल मिलाकर सत्तावन हजार रुपए बन जाएँगे। दो महीने

में दोनों घोड़ों से साठ हजार तो आ ही जाएँगे।

अधिक पैसा पाने की अभिलाषा में रामदीन के सपनों ने भी जोर मारा। अब उसके सपने भी अधिक बड़े होने लगे। रामदीन का घर बहुत ही छोटा था, एक पक्का कमरा और उसके बाहर छप्पर के नीचे बनी रसोई। ठंड के दिनों में तीन तरफ से आती हवा जिस्म को सुन्न कर देती थी, तो बरसात के दिनों में छत का टपकता पानी दो रोटी सुकून से नहीं खाने देता। पिछले वर्ष पड़ोस का हर्षू भाई तीन साल बाद घर आया था मुंबई से। वह अपने दो कमरों के मकान को बेचकर गाँव छोड़कर जाने की बात कह रहा था। कीमत चालीस हजार बताई थी उसने, लेकिन चालीस हजार रामदीन की औकात से बाहर की बात थी। वह मकान रामदीन के मकान से ही जुड़ा हुआ था, किंतु खरीदना रामदीन के लिए एक सपने की तरह था। आज रामदीन को अपना सपना सच होता प्रतीत हो रहा था। सत्तावन हजार लेकर जाएगा वह। सबसे पहले हर्षू भाई का मकान खरीदेगा, कितना सुख मिलेगा उसे बड़े घर में। बच्चों के लिए अलग और अपने लिए अलग कमरों के साथ ही रसोई भी पक्के कमरे के अंदर हो जाएगी उसकी, बच्चे और पत्नी बहुत खुश हो जाएँगे।

घर लेने की चाहत ने उसके धैर्य को दिलासा दी, चलो केवल दो महीने की ही बात है, फिर तो ऐश-ही-ऐश होगी, गाँव और समाज में उसकी इज्जत होगी। गाँव की पंचायत में उसको भी कुरसी पर बैठने का अधिकार मिल जाएगा। प्रसन्नता और उत्साह के मारे उसने दो महीने और यात्रा चलाना स्वीकार कर लिया।

उसने दो महीने यात्रा चलाई भी, लेकिन न तो उसके भाग्य में पैसा मिलना लिखा था और न सोबत की नीयत में पैसा देना।

रविवार सुबह जब वह केदार का एक चक्कर मारकर गौरीकुंड के लिए लौट रहा था तो भारी बरसात के साथ गाड़-गधेरे उफना गए थे। रास्ते में ही उसे पता चला कि गौरीकुंड में नदी की बाढ़ ने भारी तबाही मचा दी है। कई लोग मारे गए और घर, मकान, दुकानें भी बह गईं।

'हे भगवान्! तू सोबत लाला की रक्षा करना, उसे सही-सलामत रखना। कहीं उसे कुछ हो गया तो मैं बरबाद हो जाऊँगा।' वह मन-ही-मन सोचने लगा। बिजली जैसी तेजी आ गई थी उसकी चाल में। हाँफते हुए वह गौरीकुंड पहुँचा तो सोबत सिंह का मकान और घुड़साल गायब थे। वहाँ अब नदी बह रही थी। सोबत की लाश ऊपर रौखड़ पर निर्जीव पड़ी थी। रामदीन उसकी लाश से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा। उसे सोबत सिंह के मरने का दुःख नहीं था, अपितु अपनी रकम मारे जाने का भारी दुःख था। अब उसके पैसे का क्या होगा। घर जाकर क्या मुँह दिखाऊँगा पत्नी और बच्चों को। अच्छा होता कि सोबत सिंह की जगह मैं खुद मर जाता तो कम-से-कम परिवार को छह लाख रुपए तो मिलते, भविष्य बन जाता उनका।

बौखला सा गया था रामदीन।

''मैं मरा क्यों नहीं? क्यों नहीं मरा मैं?'' वह ढाड़ें मार-मारकर रोने लगा, फिर न जाने उसे क्या हुआ! उसे लगा जैसे वह वास्तव में ही मर गया है। वह और जोर-जोर से रोने लगा।

''अरे, रामदीन मर गया रे, रामदीन मर गया! घोड़ा चलाता था बेचारा, मर गया रामदीन।''

तभी पीछे से किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा, ''कौन था रामदीन?''

''रामदीन मर गया, खड़गाड़ गाँव का रामदीन, कलमदास का

लड़का रामदीन। मर गया रामदीन।'' रामदीन अपनी रौ में रोए जा रहा था। उसे मालूम न था कि उसके पीछे पुलिस के तीन जवान खड़े हैं।

पुलिसवालों ने उसका नाम-पता नोट किया, उनमें से एक स्टारवाले ने कहा, ''रामदीन के परिवार को भी मुआवजा भिजवा दो।''

□

अपने ही जाल में

''इंस्पेक्टर साहब! मेरा आदमी केदारनाथ गया था, लौटकर नहीं आया। कई दिन से उनकी रहा देख रही थी, घर में वही एक कमानेवाला था। मैं तो बरबाद हो गई। मेरे बच्चे तो भूखों मर जाएँगे, मुझे मुआवजा दिला दो।''

वह स्त्री देहरादून में पुलिस के इंक्वायरी सेंटर में रो-रोकर अपनी व्यथा सुना रही थी। उम्र लगभग तीन वर्ष, रंग साफ, देखने में सुंदर, किंतु चेहरा मुरझाया हुआ। लगता था मानो कई दिन से बीमार हो। इंस्पेक्टर बलवंत रावत को उस पर दया हो आई।

''क्या नाम था तुम्हारे आदमी का?''

''जी, रामआसरे।''

''क्या करता था?''

''जी, कुछ नहीं।''

''केदारनाथ क्यों गया था?''

''जी, यात्रा पर।''

''कहाँ घर है तुम्हारा?''

''जी, रसूखपुर, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश।''

इंस्पेक्टर को महिला के जवाब कुछ अजीब से लगे। लाचारी उसके चेहरे से झलक रही थी, लेकिन न जाने क्यों, उसे ऐसा लग रहा था मानो वह कुछ छिपा रही है। अभी एक महीना हुआ नहीं है

और यह मुआवजा माँगने चली आई। उसने यह नहीं कहा कि पति को ढूँढ़ दो, आखिर इसे पति से ज्यादा मुआवजे की चिंता क्यों है? इंस्पेक्टर रावत के जेहन में अनेक विचार कौंध रहे थे।

प्रत्यक्षत: वह महिला से बोला, ''ठीक है, हमने नाम-पता नोट कर लिया है, जल्दी ही मुआवजा मिल जाएगा।''

''साहब, मैं किस दिन आऊँ?'' महिला की व्यग्रता छिपी न रह सकी।

''हम फोन करके बुला लेंगे।'' इंस्पेक्टर ने उसे टालनेवाले अंदाज में कहा।

''ठीक है साहब, जरा जल्दी बुलाना। घर का बहुत बुरा हाल है।'' वह चली गई।

सचमुच उसके घर का हाल बुरा ही था। तीन-तीन बच्चे और आमदनी कुछ नहीं। तीन बच्चों को रोटी खिलाना किसी मुसीबत से कम नहीं था उसके लिए। एक दिन की बात हो तो चलो झेल जाए, लेकिन वह तो पिछले कई वर्षों से इस समस्या से जूझ रही थी।

पति घर-परिवार से बेखबर शराब पीने में मस्त। उसे न पत्नी की चिंता थी और न बच्चों के भविष्य की। उसे तो सिर्फ मस्ती सूझती थी। सुबह नौ बजे वह दफ्तरवालों की तरह घर से निकलता, दिन भर यार-दोस्तों के साथ न जाने कहाँ-कहाँ रहता और साँझ ढले नशे में धुत्त होकर लड़खड़ाते हुए घर पहुँचता। खाने की थाली न मिलती तो पत्नी पर चिल्लाता।

तीन-तीन घरों में झाड़ू-पोंछा करके शांति किसी तरह से इन बच्चों का पेट पाल रही थी; लेकिन इसके बावजूद वह सुखी नहीं थी। सुखी होती कैसे, आदमी ने तो जीना हराम कर रखा था। कभी यदि उसके पास शराब के लिए पैसे नहीं होते तो वह लड़-झगड़कर उससे पैसे माँगता। पैसे न देने पर मार-पिटाई करता। सुख-दु:ख के

लिए एक-एक पैसा बचाकर रखी गई उसकी पूँजी रामआसरे की शराब की भेंट चढ़ जाती।

रामआसरे का कोई निश्चित ठिकाना भी नहीं था, कई बार तो वह हफ्ते, दो हफ्ते और महीने भर में घर लौटता। मालूम नहीं कि कहाँ-कहाँ रहता, किंतु पैसा खत्म होते ही फिर घर लौट आता।

बेचारी शांति क्या करे? उसकी समझ में कुछ भी न आता। वह सोचती, यह तो न खुद जी रहा है और न हमें जीने दे रहा है। इससे अच्छा तो यह होता कि कहीं मर ही जाता। आधा पेट खाते किंतु सुखी तो रहते, लेकिन भगवान् भी पापियों को इस धरती से जल्दी कहाँ उठाते हैं!

केदारनाथ में ही देखो, कितने तीर्थयात्री मर गए बेचारे। कितनी श्रद्धा के साथ गए होंगे भगवान् के दर्शन करने, किंतु वहीं मर-खप गए। उसने सुना था कि वहाँ पर मरनेवालों के परिवारवालों को सरकार छह-छह लाख रुपया मुआवजा दे रही है। काश! मुआ वहीं-कहीं मर गया होता। लेकिन भगवान् को हमारा सुख कहाँ मंजूर है। सुख? हाँ, सुख...। सचमुच, यदि मेरे पास भी पैसे होते तो इन बच्चों को स्कूल में पढ़ाती, अच्छी शिक्षा देती, इन्हें बड़ा आदमी बनाती, ताकि अपने बाप की तरह इनकी बरबादी न हो। शांति के मन में अनेक विचार उथल-पुथल मचा रहे थे।

बच्चे इनसान की कमजोरी होते हैं। इनसान इस दुनिया में जो कुछ भी करता है, जितना भी कमाता है, उसके पीछे बच्चों का ही मोह होता है। लेकिन इन बच्चों का क्या होगा? कैसे कटेगा इनका जीवन? सोचते-सोचते शांति की आँखों में अँधेरा सा छाने लगा। अचानक इसी विराट् अँधेरे में उसे एक आशा की किरण दिखाई दी, अब वह रात के अँधेरे के छँटने का इंतजार करने लगी।

सुबह होते ही वह देहरादून पहुँच गई थी, देहरादून से लौटी तो

उसे आज बहुत सुकून मिल रहा था। उसे उम्मीद थी कि अपने निकम्मे और शराबी पति की झूठी मृत्यु पर उसे छह लाख मिल जाएँगे। यों भी वह पिछले एक माह से घर से लापता है।

मृतकों के परिवारजनों को मुआवजा मिलना प्रारंभ हो गया था। एक महीने तक घर नहीं लौटनेवालों को भी सरकार ने मृतक घोषित करके मुआवजा देना शुरू कर दिया था। शांति बेसब्री से पुलिस के फोन का इंतजार करने लगी। करीब पंद्रह दिन बाद पुलिस का फोन आया और उसे देहरादून बुलाया गया। वह बड़ी उम्मीद के साथ कई सपने बुनती वहाँ पहुँच भी गई, लेकिन पुलिस दफ्तर में पहुँचते ही उसके सारे सपने चूर-चूर हो गए। मुआवजा देने के बजाय पुलिस ने उसे लॉकअप में बंद कर दिया।

पुलिस वैरिफिकेशन में उसके झूठ और उसके पति की सच्चाई का पता चल गया था। अपने बुने जाल में वह खुद ही फँस गई थी।

□

पानी और पानी

रुद्रप्रयाग को पीछे छूटे बहुत देर हो चुकी थी। केदारनाथ की ओर हिमालय की निचली पहाड़ियों की प्राकृतिक हरियाली और मनमोहक घाटियाँ, सर्पाकार मार्ग की सुंदरता और आसमान में घिर आए बादलों को निहारने में किसी की भी रुचि नहीं थी। गाड़ी में सभी ऊँघ रहे थे। केवल ड्राइवर लक्ष्मण स्टीयरिंग थामे, रुक-रुक कर होती बूँदाबाँदी से गीले पहाड़ के बलखाते रास्तों, आक्रामक नींद और पेट में दौड़ते चूहों से जूझ रहा था। उसके लिए यह यात्रा टूरिस्ट सीजन में कमाई का एक साधन थी, इससे अधिक कुछ नहीं। लक्ष्मण ऋषिकेश का निवासी था और दिहाड़ी पर ड्राइविंग करता था। दिल्ली से बदरी-केदार घूमने जा रहे दिल्ली के इस नौ सदस्यीय परिवार के मुखिया प्रकाश ने उसे चार दिन के लिए गाड़ी चलाने के लिए रखा था।

अचानक एक मोड़ पार करते ही इनोवा फिर रुक गई। आगे की सीट पर ऊँघते प्रकाश की गोद में चैन से सोई चार साल की ईवा ने डैशबोर्ड से सिर टकराते ही कोहराम मचा दिया। हड़बड़ाकर जागी अनुराधा ने प्रकाश, लक्ष्मण अथवा ईवा में से जाने किससे पूछा, ''क्या हुआ?''

क्या हुआ, स्वयं प्रकाश को भी कुछ मालूम नहीं था। रोती हुई ईवा को पुचकारते-बहलाते हुए वह कार से नीचे उतरा तो मोड़ से

आगे का नजारा देखकर दंग रह गया। जहाँ तक नजर जा रही थी, दूर-दूर तक तरह-तरह के वाहनों की लंबी कतार लगी हुई थी। बारिश की बूँदों से बचने के लिए वह पुन: गाड़ी के अंदर बैठ गया।

''बहुत लंबा जाम लगा है। लगता है, एक-डेढ़ घंटे से पहले नहीं खुलेगा।'' प्रकाश ने बताया तो कार के अंदर बैठे सभी लोग बेचैन हो गए।

अपने नौ सदस्यीय परिवार के साथ प्रकाश पहली बार केदारनाथ की यात्रा पर आया था। उसके साथ उसके पचहत्तर वर्षीय सेवानिवृत्त शिक्षक पिता घनश्याम दास, पत्नी अनुराधा, बेटी ईवा के अतिरिक्त सास आराधना, छोटी बहन चालीस वर्षीया सुमन और उसकी दो बेटियाँ अठारह वर्षीया माधवी तथा सोलह वर्षीया साधवी कल सुबह ही दिल्ली से चले थे। ऋषिकेश से प्रकाश ने एक ट्रैवल एजेंसी से ड्राइवर ले लिया था, क्योंकि उसे पहाड़ी रास्तों का बहुत अधिक अनुभव नहीं था।

पूरे एक घंटे बाद जाम खुला। पता चला, कुछ दूर अगस्त मुनि के पहले सड़क पर पहाड़ से भूस्खलन हो गया था। सड़क सँकरी होने के कारण वाहनों का आवागमन जैसे रेंगते हुए हो पा रहा था।

उत्तराखंड पर्वतीय प्रदेश है। यहाँ की सड़कें पहाड़ों को काटकर बनाई गई हैं। सँकरी और घुमावदार इन सड़कों की चौड़ाई कम होती है, बड़ी मुश्किल से दो बसें आपस में क्रॉस हो सकती हैं। थोड़ी सी बूँदाबाँदी होने के बाद ऊपर पहाड़ियों से होता भूस्खलन सड़कों को अवरुद्ध कर देता है।

गरमियों के मौसम में चारधाम यात्रा और घूमने के प्रयोजन से लोग मैदानों से पहाड़ों की ओर दौड़े आते हैं, इस कारण सड़कों पर वाहनों का दबाव काफी अधिक बढ़ जाता है, फलस्वरूप जगह-जगह

पर जाम लगना आम बात है।

अगस्त मुनि होते हुए शाम के सवा सात बजे गुप्तकाशी से सात किलोमीटर पहले नैनवार गाँव की दुकानों की रौनक, सड़क के किनारे रुकी गाड़ियाँ और बसें देखकर प्रकाश ने एक पल को सोचा कि कुछ देर को यहीं रुका जाए। इनोवा का यह हाल हो गया था, जैसे किसी ने पूरी गाड़ी पर धूल की एक मोटी परत ही चढ़ा दी हो। धुएँ, धूल और गंदगी से काले रंग की गाड़ी खाकी रंग की नजर आ रही थी। उधर बच्चे भी भूख से बिलबिला रहे थे। महिलाएँ उल्टियाँ करते-करते परेशान थीं और लक्ष्मण गाड़ी चलाते थक चुका था। प्रकाश ने जब ऐलान किया, ''यहीं रुकेंगे। पहले चाय, फिर गरमागरम खाना।'' बच्चों के साथ बड़े भी खुशी में तालियाँ बजाने लगे।

एक मंजिला पहाड़ी पठालों की ढलवाँ छत और लाल-नीली-पीली-हरी दीवारोंवाले दुर्गा वैष्णव ढाबा के ठीक सामने सड़क पर ही गाड़ी जानेवाले मार्ग की दिशा में खड़ी कर दी गई। सब उतर पड़े। अनुराधा दिल्ली से चलते समय ही गाड़ी में पीने के पानी की दो लीटर की कई बोतलें धर लाई थी। सफाई के बाद मिनरल वाटर उसकी दूसरी सनक था। कॉलोनी की औरतें तक उसे पीठ पीछे, 'मिनरल भाभी' कहकर जिक्र करती थीं।

नन्ही ईवा माँ की गोद में आने को मचल गई। अनुराधा एक बगल में ईवा और दूसरी में पानी की दो बोतलें दबाए ढाबे की ओर बढ़ रही थी, तभी बूँदाबाँदी फिर से शुरू हो गई।

इस बीच प्रकाश के पिता घनश्याम और उनकी समधिन आराधना, प्रकाश की छोटी बहन सुमन ढाबे में एक बड़ी मेज के चारों ओर सेट हो चुके थे। सुमन की बेटियाँ माधवी और साधवी ईवा को गोद में लटकाए ढाबे की पिछली दीवार में बनी खिड़कियों

से झाँककर नीचे का नजारा देख रही थीं। अनुराधा ने आते ही मिनरल वाटर की बोतलें मेज पर रखीं और फिर ढाबा मालिक से कहकर मेजों को सरकवाकर खिड़की से सटवा दिया। इसके बाद चाय और चाय के बाद खाना पेश करने का निर्देश दिया गया।

चाय के एक दौर ने ही सबको मस्त कर दिया। ढाबे में गरमागरम पराँठों और सूखे दमआलू के साथ ही मसालेदार कढ़ी-चावल भी बहुत स्वादिष्ट थे। खाना परोसनेवाले दोनों लड़के देखने में भी सुंदर और सुशील थे और उनका सेवाभाव भी सबको पसंद आया। कुछ ही देर में बातों-ही-बातों में इन लोगों ने पता कर लिया कि वे गुप्तकाशी के पास ल्वारा गाँव के निवासी हैं। उनके पिता के पास चार खच्चर थे और घर पर बहुत छोटी सी किराने की दुकान भी। सैलानी पूरे साल आते नहीं, और सभी सैलानी केवल उनसे ही तो व्यापार करते नहीं थे, इसलिए उनकी माली हालत बहुत अच्छी नहीं थी।

इनसान कहीं भी रहता हो, कुछ भी करता हो, परंतु प्रेम की भाषा सभी को भाती है। दोनों लड़के अपनी हमउम्र माधवी-साधवी को देखकर शरमा रहे थे। दिल्ली के तेज रफ्तार बिंदास जीवन की अभ्यस्त दोनों लड़कियाँ उनके इस आकर्षण को समझते हुए खिलखिलाए जा रही थीं। यह देखकर अनुराधा का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया, वैसे भी उसे प्रकाश की बहन और बच्चे पसंद नहीं थे, चिल्लाई, ''क्या खीखी-ठीठी लगा रही है। शर्म है या बेच आई?''

''मामी, वो तो हमने ऋषिकेश में ही बेच दी थी। उसके पैसे भी आपके पर्स में रखवाए थे, याद नहीं आपको?'' माधवी ने कुछ इस तरह से अनुराधा को जवाब दिया कि प्रकाश समेत सभी को हँसी आ गई।

खाना खत्म होते ही सब उठ खड़े हुए, खाने और चाय का बिल आया कुल तीन सौ सत्तर रुपए। प्रकाश ने चार सौ रुपए ट्रे में रखते हुए कहा, ''बाकी तीस रुपए हमारे दोनों नए दोस्तों के। खूब सेवा की आपने।''

अनुराधा ने धीमे स्वर में विरोध जताते हुए प्रकाश से कहा, ''दस दे दीजिए। तीस की क्या जरूरत है?''

मगर प्रकाश अनुराधा की बात सुन ही नहीं रहा था। वह तो ढाबा मालिक से बात कर रहा था। जैसे ही अनुराधा और बाकी सब लोग काउंटर के पास तक आए, उसने उन लोगों की ओर पलटकर घोषणा की, ''हम लोग आज यहीं उस सामनेवाले साफ-सुथरे होटल 'यात्री' में रुकेंगे। कल सुबह केदारनाथजी की यात्रा शुरू होगी।''

तभी अनुराधा ऐसे चिल्लाई, जैसे आग लग गई हो, ''हमारी मिनरल वाटर की बोतल कहाँ गई?''

प्रकाश बोला, ''तुम्हारी बगल में।''

अनुराधा नाराज होकर बोली, ''यह नहीं, दूसरीवाली।''

इसके बाद दूसरी बोतल की तलाश में अगले दस-पंद्रह मिनट में अनुराधा ने ढाबे का कोना-कोना छान मारा, मगर बोतल कहीं मिली ही नहीं। झल्लाकर उसने कहा, ''समझी, जब हम खाना खा रहे थे, तब इन छोकरों ने सीलबंद बोतल खिसकाकर पार कर दी और किसी दूसरे कस्टमर को बेच दी। ये सारे पहाड़ी चोर हैं, हरामखोर!''

सुनकर ढाबेवाले को भी गुस्सा आ गया। वह भी ऊँचे स्वर में बोला, ''मैडमजी, चोर किसे कहती हैं आप? पहाड़ी चोर होते हैं या आप लोग? आप सब टिहरी डैम से बिजली, गंगा-यमुना से पानी और सरहदों पर खपनेवाले हमारे नौजवानों की जवानी के बूते

जिंदा हैं। पहाड़ी लोग पूरी दुनिया में अपनी गरीबी से ज्यादा बहादुरी और ईमानदारी के लिए मशहूर हैं। हम चुराएँगे आपकी बोतल?''

प्रकाश ने बात खत्म करने के उद्‌देश्य से पूरी ताकत से अनुराधा को फटकारा, ''इनोवा में दस बोतलें और हैं, जितनी चाहो और खरीद लेना, मगर यहाँ नीचता मत दिखाओ। ये लोग क्यों चोरी करेंगे? जब हम लोग तुम्हारे कहने पर खाने की मेज सरका रहे थे, तब मुझे लगा था कि कोई चीज नीचे गिरी। मैं देख नहीं पाया, नीचे झाड़ियाँ और अँधेरा था। हो सकता है बोतल ही गिरी हो।''

ढाबे के मालिक के पैर में कुछ खराबी थी, उसका नाम था गणेश नेगी। वह अपने गल्ले से सौ रुपए का नोट निकाल लाया और धीमी आवाज में बोला, ''भाईजी, मैं अपनी गलती के लिए शरमिंदा हूँ। गलती हमारी ही होगी। ये रुपए मुआवजा समझकर रख लीजिए।''

प्रकाश भावुक हो उठा, उसने गणेश को गले लगाकर इतना ही कहा, ''तुमसे उम्र में बड़ा हूँ, परंतु मैं अपनी पत्नी के व्यवहार से शरमिंदा हूँ, रुपए रख लो। आप मेरे छोटे भाई जैसे हो।'' माहौल कुछ तनावपूर्ण सा हो गया था, सब लोग ढाबे से पैदल ही यात्री होटल तक चले गए। तीसरी मंजिल में उन्होंने तीन कमरे बुक करा लिये।

प्रातः सूर्य निकलने से पूर्व सभी लोग तैयार होकर बाहर निकल गए। वे जल्दी-से-जल्दी गौरीकुंड पहुँच जाना चाहते थे। बाहर निकलकर सड़क पर आए तो वहाँ काफी लोग जमा थे। कोहराम जैसा मचा था।

''क्या बात हो गई?'' लक्ष्मण ने किसी से पूछा।

''कल रात मंदाकिनी और सरस्वती नदी में बाढ़ आ गई, गौरीकुंड और रामबाड़ा में बहुत नुकसान हुआ है। आप भी आगे

मत जाइए।'' एक बूढ़ा व्यक्ति बोला।

सब लोगों को जैसे साँप सूँघ गया। बूँदाबाँदी जारी थी, तभी ऊपर की ओर से भारी शोर-शराबा और गर्जना की आवाज हुई। ऊपर नजर पड़ते ही सबके होश उड़ गए। मंदाकिनी नदी के उफनाए वेग के साथ भारी-भारी पत्थर, पेड़-पौधे एक सैलाब की तरह तेज गति से बहते हुए चले आ रहे थे। साक्षात् प्रलय आ गई हो जैसे। कोई कुछ भी नहीं समझ पाया। जिसको जिधर सूझा, भागने लगा। भगदड़ सी मच गई।

'भागो-भागो' कहते हुए प्रकाश ईवा को गोद में उठाकर पिता और सास का हाथ खींचते हुए ऊपर की ओर भागा। सँकरी घाटी में बने पुल के ऊपर से गुजरता हुआ पानी सड़क तक पहुँच गया था। पानी का प्रचंड वेग इतना था कि बाजार पूरी तरह नदी में खो गया।

एक-दूसरे का हाथ थामे सभी लोग ऊँचाईवाले स्थान की ओर भागने लगे, किंतु न जाने अनुराधा किस चीज से उलझ गई कि उसका हाथ छूट गया और वह तेजी से बहती चली गई। प्रकाश और अन्य सभी लोग देखते रह गए। इससे पहले कि वह कुछ कर पाता, अनुराधा तेजी से बहते हुए बाजार के उस किनारे पहुँचकर आँखों से ओझल हो गई।

रोने-चिल्लाने के अलावा और कुछ नहीं था प्रकाश और उसके परिवार के पास। जीती-जागती अनुराधा को एक ही क्षण में अपनी आँखों के सामने बह जाने दिया था उन्होंने, और उसको बचाने के लिए कुछ भी न कर सके। ईवा का तो रो-रोकर बुरा हाल हो गया था।

तबाही का यह मंजर लगभग तीन-चार घंटे तक चला। पानी कम होने की प्रतीक्षा में लोग पहाड़ी पर ही दुबके हुए थे। दोपहर लगभग एक बजे जब पानी काफी कम हो गया तो पूरा बाजार

कीचड़ से सना हुआ लग रहा था। भयभीत लोग धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे।

प्रकाश के साथ सभी लोग नीचे उतर आए तो देखा कि लोगों से घिरी और कीचड़ से बुरी तरह लथपथ अनुराधा लँगड़ाते हुए सामने से चली आ रही है। दुर्गा वैष्णव ढाबे में काम करनेवाले वही दो लड़के दोनों ओर से उसकी बाँह थामे हुए थे।

कातर स्वर में अनुराधा ने बताया कि ढाबे का मालिक गणेश नेगी उसे बचाने के लिए अपने दोनों नौकरों को लेकर पानी में कूद गया था। वह पहाड़ी के दूसरे छोर पर घायल पड़ा हुआ है।

प्रकाश तुरंत ही ढाबेवाले लड़कों के साथ वहाँ पहुँचा। लोगों से घिरा हुआ गणेश चित लेटा हुआ था, ऐसा लग रहा था मानो उसका शरीर निर्जीव हो गया हो।

''गणेश भाई! यह क्या किया आपने, मर जाने देते मेरी पत्नी को।'' प्रकाश ने उसे झकझोरा। गणेश के गले से एक घुटी सी आवाज निकली, उसने आँखें खोल दीं।

''नहीं भाई साहब! यह तो मेरा फर्ज था, भला अपनी आँखों के सामने हम उन्हें कैसे मरने देते।'' गणेश का कमर से नीचे का हिस्सा निर्जीव हो चुका था। एक टाँग तो उसकी पहले से ही टूटी हुई थी। अब…।

''प्रकाश, वापस चलो, इन्हें तुरंत दिल्ली ले चलना है।'' पीछे आ चुकी अनुराधा ने कहा।

प्रकाश ने पीछे मुड़कर देखा। बात-बात में लड़ने-झगड़ने और बात का बतंगड़ बनानेवाली अनुराधा की तो आज जैसे कायापलट हो गई थी। उसकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू थे।

□

लौट आया हूँ

सुषमा असह्य प्रसव वेदना से छटपटा रही थी तो दूसरी ओर मूसलाधार बारिश ने आम आदमी के जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया था। गाँव की तीन-चार महिलाएँ उसे ढाढ़स बँधा रही थीं, रात खुल जाए तो उसे टैक्सी बुक करके ऊखीमठ के अस्पताल तक पहुँचाएँ।

कल से एक क्षण के लिए भी बारिश थमने का नाम नहीं ले रही। बारिश भी ऐसी कि पहले कभी किसी ने न देखी, न सुनी। सुषमा को ऐसा लग रहा था, मानो आज की यह काली रात टलेगी ही नहीं। पति रघुवीर कल घर आने को कह गया था, लेकिन आए नहीं। एक तरफ घर में अकेली सुषमा और दूसरी तरफ प्रसव वेदना। कल दिन से ही उसे हलका-हलका दर्द महसूस हो रहा था। गाँव में ही बुजुर्ग महिलाएँ उसे हिदायतें देती थीं कि हलका दर्द तो यदा-कदा होता ही है। इसलिए सुषमा बिना किसी को कुछ कहे चुपचाप घर का सारा काम करती रही। दर्द होने के बावजूद वह जानवरों के लिए घास लेने गई, धारे से दो बरतन पानी भी लाई। पति की प्रतीक्षा करते-करते उसने रघु की मनपसंद कुलथ की दाल और भात बनाया। इंतजार करते-करते साँझ हो आई, कुछ भूख, कुछ दर्द और इन सबसे कहीं ज्यादा रघु के न आने से दु:खी सुषमा का चेहरा उतर गया।

पानी लेने के लिए जा रही धन्ना सासू ने सुषमा को बुझा-बुझा सा देखकर पूछ ही लिया।

''हे ब्वारी, तू ऐसे झुम्म क्यों हो रही है, तबीयत ठीक है तेरी न?''

''जी, वैसे तो ठीक है, पर कभी-कभी निचले पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द है।'' बोली सुषमा।

''यही तो महीना है न तेरा?''

''हाँ जी, यही महीना है।''

''रघु कब आएगा? जब उसे मालूम था कि तेरा प्रसव होना है तो फिर कुछ दिन घर में नहीं रह सकता था?'' धन्ना सासू ने चिंता जताते हुए कहा।

''जी, कहकर तो गए थे कि 15-16 तक आ जाऊँगा, लेकिन यह सर्ग तब से थमा ही कहाँ!'' सुषमा के चेहरे पर भी चिंता की लकीरें उभर आई थीं।

केदारनाथ में पंडिताई का काम था रघुवीर का। पिछले चार वर्षों से वह यात्रा के दौरान भगवान् केदार और अपने यजमानों की सेवा में लगा रहता था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने अपना यह पुस्तैनी काम सँभाल लिया था। माँ ने किसी तरह उसे बारहवीं तक पढ़ाया था। घर की माली हालत के चलते उसने अपने पिता की जगह ले ली थी। पिता द्वारा सुरक्षित रखे गए पोथी और खातों की मदद से वह काम भी जल्दी ही सीख गया।

माँ पिछले काफी समय से जोड़ों के दर्द से परेशान थी। किसी तरह से घर का काम निबटाती थी। केदारनाथ में रहते हुए उसे बराबर माँ की चिंता बनी रहती, किंतु उसके पास माँ को छोड़कर यहाँ आने के अलावा अन्य कोई विकल्प भी नहीं था। माँ को सँभालता है तो फिर रोजी-रोटी कैसे चलेगी। यही सब सोचकर

माँ ने बाईस साल की उम्र में ही उसकी शादी कर दी थी।

सबकुछ ठीक-ठाक ही चल रहा था, किंतु शादी के तीन साल तक माँ नाती का मुँह नहीं देख पाई और मन में नाती खिलाने की लालसा लिये वह इस दुनिया से विदा हो गई।

पड़ोस की धन्ना चाची ने एक दिन उससे कहा, ''रघु, तुझे कुछ समझ भी है, जरा ब्वारी का भी ध्यान रखा कर।''

वह कुछ समझा नहीं तो पूछ लिया, ''क्यों चाची, क्या हो गया उसे, जो उसका ध्यान रखूँ? ठीक तो है।'' संकोचवश चाची कुछ कह तो न सकी, लेकिन जाते-जाते धीमी आवाज में बड़बड़ाती रही, ''पता नहीं आजकल के लड़कों को किस भाषा में समझ आता है।''

चाची के सवालों में उलझा सीधा घर जा उसने सुषमा से ही पूछ लिया, ''तुम्हारी तबीयत खराब है क्या?''

''क्यों? ऐसा क्यों पूछ रहे हो?'' समझकर भी अनजान सुषमा ने उलटा रघु से ही सवाल कर दिया।

''नहीं...मैं तो इसलिए पूछ रहा था कि रास्ते में धन्ना चाची ने मुझे रोककर कहा कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है।''

सुषमा खामोश रही।

रघु ने सुषमा को पास बिठाकर फिर पूछना चाहा तो सुषमा लजा गई। उसने हथेलियों में अपना मुँह छुपा लिया, कैसे कहे वह?

कुछ-कुछ रघु को भी समझ आने लगा, किंतु अपनी इस शंका को वह सुषमा के मुँह से ही सुनकर पुष्टि करना चाह रहा था। इसलिए उसने सुषमा की हथेलियों को उसके चेहरे से हटाकर अपने हाथों से उसके चेहरे को छुआ तो सुषमा की नजरें झुक गईं। ''सुषमा, कहो न, क्या बात है?''

''आप...आप...पा...पापा बननेवाले हो।'' शरमाते हुए और हिम्मत

जुटाकर सुषमा ने बोल ही दिया। सुनते ही रघु के मन में हजारों लड्डू फूट पड़े। उसने सुषमा को गले लगा लिया और फिर कुछ क्षण दोनों सुनहरे भविष्य की कल्पना में नन्हे कोंपल के जन्म लेने के सुखद एहसास में खो गए।

तीन साल की लंबी अवधि के बाद उसे यह खुशखबरी मिली थी, लेकिन मन के कोने में माँ की याद भी ताजा हो आई, काश! माँ भी अपने पोते का मुँह देख पाती। शायद ईश्वर को यही मंजूर रहा होगा। भगवान् केदार के दरबार में रहते-रहते वह श्रद्धावान हो गया था, इसलिए हर अच्छी-बुरी चीज को भगवान् की मरजी कहकर मन शांत कर लेता था।

पिछले महीने सुषमा को लेकर वह ऊखीमठ अस्पताल में उसका चैकअप कराने गया था। यात्रा शुरू हो गई थी, इसलिए वह चाहता था कि केदार जाने से पहले सुषमा के स्वास्थ्य के बारे में आश्वस्त हो जाए।

नर्स बहनजी ने बताया था कि सबकुछ नॉर्मल है और अगले महीने सोलह-सत्रह तारीख के लगभग डिलीवरी होगी। घर आकर सुषमा ने ही उसे कहा था, ''मैं ठीक हूँ, आप अपने काम पर चले जाओ।'' और फिर वह पंद्रह तारीख घर आने की बात कहकर केदार चला आया था, लेकिन वह पंद्रह तारीख को लौटा नहीं।

पति की इंतजारी में सुषमा की आँखें पथरा गईं। हालाँकि गाँव की चार-पाँच महिलाएँ उसके पास थीं, लेकिन अब उसे कुछ घबराहट भी होने लगी थी। आखिर वह लौटकर क्यों नहीं आए? प्रसव पीड़ा से अधिक अब उसे पति के न आने की चिंता होने लगी। किसी तरह रात कट गई। सुबह ऊखीमठ जाने की तैयारी कर रहे थे कि गब्बर सिंह जेठजी ने बताया कि सारी सड़कें टूट गई हैं। केदारनाथ में बाढ़ आने के कारण भारी तबाही हो गई, हजारों लोग

मर गए। यह खबर भी गाँव में पहुँच गई, किंतु सुषमा को किसी ने इस बात की भनक तक नहीं लगने दी। महिलाएँ आपस में कानाफूसी कर रही थीं तो सुषमा को कुछ शक सा हो रहा था, क्या कह रहे हैं ये लोग आपस में?

ऊखीमठ जानेवाली सड़कें बंद होने के कारण कोई और रास्ता भी नहीं बचा था। तेज बारिश में डंडी के सहारे पैदल रास्तों से दस किलोमीटर का सफर करके वहाँ पहुँचना अत्यंत दुष्कर था। उसकी पीड़ा बढ़ती जा रही थी और उसी अनुपात में बढ़ती जा रही थी बारिश की तीव्रता भी। उसकी पीड़ादायक चीखें बारिश के इस भयंकर शोर में घुटकर रह जातीं। धीरे-धीरे गाँव की सारी महिलाएँ इकट्ठा हो गई थीं। महिलाओं की आपसी कानाफूसी से सुषमा का दिल किसी अनिष्ट की आशंका से काँप उठा, 'भगवान्, तू मेरे पति को सलामत रखना। यदि उन्हें कुछ हो गया तो मैं कहीं की नहीं रहूँगी।'

और फिर एक लंबी चीख के बाद वह हलकी हो गई।

''हे भुली, लड़का हुआ है।'' कांति जेठानी ने जब बताया तो उसे तनिक भी खुशी नहीं हुई। उसका मन उद्वेलित हो उठा। क्या करना है मुझे बेटे का, पहले मेरा पति सकुशल चाहिए। शादी के बाद उसे रघु का भरपूर प्यार मिला। तीन वर्ष तक बच्चा न होने के बावजूद उसने कभी बच्चा न होने का दु:ख नहीं जतलाया, बल्कि हमेशा उसे धैर्य बँधाए रखा।

और आज देखो, बच्चा तो हो गया, पर रघु का कहीं अता-पता नहीं, कहाँ है, किस हाल में है? किसी को कोई खबर नहीं। सुषमा को तो उस दुधमुँहे बच्चे का तनिक भी मोह नहीं था। उसे तो बस रघु चाहिए। रह लेगी वह बच्चे के बिना सारी उम्र, लेकिन रघु के बिना एक क्षण की कल्पना से ही जान निकल जाती

और शरीर सिहर उठता। अब तो उसकी आँखें छलछला आई थीं और दिल भी बैठने लगा था। नवजात शिशु को तो उसने अभी तक देखा भी नहीं था।

भीड़ इकट्ठी हुई तो जितने मुँह उतनी बातें। कई महिलाएँ, जो आज भी संकीर्ण मानसिकता को अपने मन के कोने में पोटली बनाकर रखती हैं, कहने लगीं, ''कैसा निर्भागी है, पैदा होते ही माँ-बाप के जीवन में दुःखों का पहाड़ ले आया।'' प्रसवोपरांत हो रही परेशानियों से जूझती सुषमा उनकी कानाफूसी को भाँप रही थी, पर समय ही ऐसा था कि उसे रघु के सिवाय न कुछ देखने की इच्छा थी और न ही कुछ सुनने की। उसका मन बुरे-बुरे खयालों से घिरता चला जा रहा था। उसके कंधे को हिलाती दाई बोली, ''सुषमा, इस बच्चे को दूध तो पिला, दूध नहीं पिलाएगी तो भूख से इसका बुरा हाल तो होगा, साथ ही तुझे भी परेशानी होगी।''

लेकिन सुषमा ने मानो कुछ सुना ही न हो, इस समय उसे इस नवजात की चिंता तो थी ही नहीं और रही अपनी चिंता, इसे तो वह करना भी नहीं चाह रही थी। उसे चिंता थी तो सिर्फ और सिर्फ रघु की, जिसके लिए वह टकटकी लगाए दरवाजे की ओर देखे जा रही थी। कुछ देर के लिए उसने अपने दोनों घुटनों पर सिर टिका दिया। कुछ क्षण वह रघु के खयालों में खोई ही थी कि उसे बाहर से आवाजें आती सुनाई दीं। एक बार को सुषमा को लगा कि शायद यह वहम है। उसने बाहर की ओर झाँका तो देखा कि 5-7 लोग छाते और बरसाती ओढ़े हुए उसके आँगन में आ गए थे। अपनी और नवजात बच्चे की चिंता छोड़कर वह दौड़कर बाहर आ गई। किसी अनिष्ट की आशंका से वह गश खाकर गिरने ही वाली थी, किंतु भीड़ के बीच में कीचड़ से लथपथ रघुवीर ने अपनी बाँहों में उसे थाम लिया।

''सुषमा, सँभालो अपने आपको। देख, मैं आ गया हूँ। परसों से पैदल चलकर कई नाले-खालों, गदेरों को पार करके मैं तेरे पास लौट आया हूँ।''

सुषमा को अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ, मानो वह अभी भी सपना देख रही थी जैसे दोनों एक-दूसरे से इस प्रकार लिपट गए जैसे वर्षों से बिछुड़े आज मिले हों। उन्हें इस बात का भी ध्यान न रहा कि सारे गाँव के लोग इकट्ठा हैं उनके चौक में।

अंदर से नन्हे बच्चे के रोने की आवाज आई तो सुषमा रघु की बाँहें झटककर अंदर की ओर चली गई।

वहाँ उपस्थित लोग मुसकराने लगे।

अब माहौल बदला तो वहाँ खड़ी महिलाओं के विचार भी बदले। थोड़ी देर पहले जो महिलाएँ उस नन्हीं सी जान को निर्भागी बता रही थीं, वही अब उसे साक्षात् केदारनाथ का अवतार मान रही थीं कि जिसने विषम परिस्थितियों में सकुशल एवं स्वस्थ जन्म लिया और पिता को भी मौत के मुँह से सकुशल वापस ले आया।

□

सब उसका है…

‘‘दया लाला और भंडारा? नहीं, नहीं! ऐसा हो ही नहीं सकता, जो एक-एक पाई के लिए मरता है, वो भंडारा लगाएगा?’’

‘‘जोगी-जोगटों तक को एक कौड़ी नहीं देता, वह क्या मुफ्त का भंडारा लगाएगा?’’

जिसने सुना, उसी ने विश्वास नहीं किया। जितने मुँह उतनी बातें। बाढ़ के साथ सबकुछ बह गया था केदारघाटी के लोगों का। दुकान, मकान, जमीन, जायदाद भी गई और सैकड़ों लोग काल के गाल में समा गए। घाटी में जहाँ-तहाँ हजारों तीर्थयात्री भी फँस गए। बाल-बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री और पुरुषों के सामने खाने के लाले पड़ गए। तीन दिन में ही सारी घाटी में बची-खुची राशन की दुकानें खाली हो गईं। लोग दाने-दाने को मोहताज हो गए।

सुना है, सीतापुर में दया लाला ने वहाँ फँसे यात्रियों और बेघरबार हुए लोगों के लिए मुफ्त भंडारा खोला है। किसी को भी विश्वास नहीं हो रहा था।

हाँ, उसका असली नाम दयाल लाल था, किंतु सब उसे दया लाला के नाम से जानते और पुकारते थे। नाम के विपरीत उसके दिल में दया का भाव लेशमात्र भी नहीं था। दान-पुण्य और दया के नाम पर तो वह एक फूटी कौड़ी भी खर्च नहीं करता था।

पहले दरजे का लालची और कंजूस था वह। एक-एक पाई के लिए मरता था। सिर्फ रामपुर ही नहीं, अपितु आस-पास के पूरे क्षेत्र और जिले तक उसके चर्चे थे।

सीतापुर बाजार में तीन मंजिला भव्य मकान था उसका। ऊपर की दो मंजिलों के दस कमरों में अतिथि-गृह चलाता था और नीचे की मंजिल में बहुत बड़ी दुकान थी उसकी। जो सामान जिले भर के किसी बाजार में नहीं मिलता था, वह दया लाला की दुकान में जरूर मिल जाता था। सुई से लेकर सब्बल तक और कपड़े, जूते से लेकर राशन तक, सबकुछ उसकी एक ही दुकान में मिल जाता था।

बड़े-बुजुर्ग बताते हैं कि पंद्रह वर्ष पूर्व उसने एक चाय की ठेली से अपने जीवन की शुरुआत की थी इस बाजार में। आज वह करोड़ों का मालिक है। उसके पास एक नहीं, आठ-आठ नौकर हैं। वह स्वयं गद्दी पर बैठा रहता और पैसा गिनने का काम करता। दो नौकर उसकी दुकान में काम करते, दो उसके खच्चर चलाते, दो नौकर अतिथि-गृह की देखभाल करते और दो ड्राइवर-कंडक्टर के रूप में बस चलाते।

अतिथि-गृह के नाम पर वह यात्रियों को खूब मूँड़ता। जब किसी भी होटल-लॉज में कमरे नहीं मिलते तो वह दुगने रेट पर अपने कमरे लगवाता। स्थानीय सभी लोग उसकी इस आदत से परिचित थे, लेकिन बाहर से आए भोले-भाले यात्री उसके जाल में फँस जाते। ठीक इसी तरह से उसकी दुकान का हिसाब भी था, जो सामान कहीं भी नहीं मिलता, उसे वह ऊँची कीमत में बेचता। बेचारे ग्रामीणों की भी मजबूरी थी, सबकुछ जानते हुए भी वे दया लाला की दुकान में ही जाते।

‘‘लालाजी, इस पर तो चालीस रुपए रेट लिखा हुआ है, फिर

आप साठ रुपए किस बात के ले रहे हो?'' ग्राहक पूछता।

''भैया, रुद्रप्रयाग से पहले यह कहीं नहीं मिलेगा, वहाँ जाकर खरीदोगे तो आने-जाने सहित यह पाँच गुना याने कि दो सौ का पड़ेगा। मैंने तो सिर्फ बीस रुपया ही मुनाफा लिया है।'' दया लाला तुरंत तर्क देता तो ग्राहक की बोलती बंद हो जाती। ठीक ही तो कह रहा है लाला। इसकी दुकान के अलावा तो यह और कहीं मिलने से रहा।

मुनाफा कमाने की अनेक तरकीबें थीं दया लाला के पास। वह ग्राहक की आँखों में ऐसे धूल झोंकता कि बेचारा सोचता कि लाला को उसने मूर्ख बना लिया। सामान तौलते वक्त लाला तराजू के दोनों पलड़ों में पहले बाटवाले पलड़े को नीचे की ओर रखता, फिर सामानवाले पलड़े में ऐसे झटके के साथ आखिर में सामान डालता कि वह एकदम नीचे झुक जाता। लाला उसी समय पलड़ा पकड़कर सामान थैले में डाल देता। ऐसा लगता मानो लाला ने वजन से ज्यादा सामान तौल दिया हो, लेकिन हकीकत में लाला अपने हाथ की सफाई से बीस-पच्चीस ग्राम की डंडी मार देता।

जोगी-जोगटे और भिखारी तो लाला के सबसे बड़े दुश्मन थे। वह उन्हें नजदीक भी नहीं फटकने देता था।

''जाओ भाई, आगे बढ़ो।'' वह पहले ही दूर से कह देता तो बेचारे सीधे आगे बढ़ जाते।

इस सब के बावजूद उस पर बाबा केदार की बड़ी कृपा थी। केवल पंद्रह ही वर्षों में वह चाय की ठेली से लेकर होटल, दुकान, घोड़े-खच्चर और बस मालिक तक बन गया। हाँ, यह भी केदारबाबा की ही तो कृपा थी कि भारी बाढ़ में सीतापुर का सारा बाजार बह गया, लोगों की छोटी-बड़ी दुकानें, होटल और रेस्टोरेंट पूरी तरह मलबे में तब्दील हो गए, लेकिन दया लाला की दुकान

और अतिथि-गृह का बाल भी बाँका न हुआ।

''भइया, घोर कलियुग है, अब तो दया-धर्मवालों से ही ईश्वर रूठ गया है।'' लुटे-पिटे लोग आपस में चर्चा कर रहे थे। लोगों ने किसी तरह अपनी जान ऊपर पहाड़ी की ओर भागकर बचाई थी। जब बाढ़ थमी तो नीचे उतरे, सबकुछ तबाह हो गया था। सिर्फ दया लाला की दुकान और मकान ही बचा था। हजारों यात्री भी वहाँ फँसे हुए थे।

''अब तो यह दुगुने-तिगुने नहीं, दस गुने रेट पर सामान बेचेगा।'' उसके स्वभाव के अनुरूप लोग चर्चा कर रहे थे।

बाजार का मंजर देखकर खुद दया लाला चकित था। ऐसा क्या चमत्कार हो गया कि ईश्वर ने उसकी जान बचाई और उसकी सारी संपत्ति भी बचा दी। उसने भगवान् का धन्यवाद किया।

अगर सभी लोगों की तरह मेरा भी सबकुछ तबाह हो जाता तो मैं क्या करता? क्या करता मैं¨? लोग रो-पीट रहे हैं, फिर भी भगवान् का शुक्र मना रहे हैं कि जान बच गई। कुछ अभागे तो वहीं दुकानों के अंदर ही दफन हो गए, कुछ अपने होटल-रेस्टोरेंट के साथ ही बह गए।

माना कि इनकी जगह मैं होता तो¨? सोचकर ही लाला का दम घुटने लगा। आपदा से तो बच गया, पर ऐसा लग रहा है कि अब यह खौफ ही मेरी जान ले लेगा।

ओह! जीवन कितना कीमती होता है, उसे आज मालूम पड़ा। मर जाता, दब जाता या बह जाता इसी धन-दौलत के साथ, तो क्या रह गया था बाकी। माना कि यह सबकुछ बच भी जाता और मैं ही न रहता तो भी यह किसके काम आता? जीवन का मोह दया लाला पर हावी हुआ तो संपत्ति के प्रति वितृष्णा भी गहरी हो आई। कुछ नहीं है मेरा अपना, सबकुछ उसका है।

ईश्वरीय इच्छा के आगे कुछ भी नहीं है। ईश्वर ने मेरी जान और संपत्ति बचाई है तो इसका कुछ उद्‌देश्य जरूर होगा।

लाला ने बिना एक क्षण गँवाए अपने सभी नौकरों को बुलाकर वहाँ फँसे सभी यात्रियों और स्थानीय लोगों के लिए नि:शुल्क भंडारा लगाने का फरमान सुना दिया।

□

सब एक जैसे नहीं होते

केदारनाथ में आई दैवीय आपदा ने उसके मन-मस्तिष्क को झकझोरकर रख दिया था। टी.वी. और रेडियो पर वह पिछले कुछ दिनों से लगातार खबरें सुन रहा था। कितना नुकसान हो गया वहाँ, कल्पना करके ही वह बेचैन हो जाता।

उत्तराखंड का ही मूल निवासी था गोपाल, लेकिन पिछले बीस वर्षों से मुंबई में सपरिवार रह रहा था। पाँच साल पहले गया था वह उत्तराखंड। बदरीनाथ-केदारनाथ और गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की यात्रा करने के पश्चात् वह अल्मोड़ा जिले के दूरस्थ इलाके में स्थित अपने गाँव भी गया था।

कितनी शांति है उत्तराखंड में, कितना सुरम्य वातावरण और स्वच्छ हवा। केवल दस-बारह दिन के अपने भ्रमण के दौरान उसे इस बार कई नए अनुभव भी हुए।

कितना सरल हो गया है अब पहाड़ का जीवन। एक दशक बाद जब वह लौटा तो सबकुछ बदला-बदला सा लगा। उसके गाँव तक सड़क पहुँच गई थी और गाँव भी अब पूरी तरह बदला-बदला सा नजर आ रहा था। पहाड़ी पत्थर की स्लेटों से बने तिरछी छतवाले मकानों की जगह अब सीमेंट के पक्के मकान अधिक नजर आ रहे थे।

वापस लौटने के बाद अब उत्तराखंड की उसे बराबर याद

आती रहती। तब से ही उसे अपनी मातृभूमि के लिए कुछ करने की इच्छा मन में थी, कई बार वह सोचता कि वहाँ कोई छोटी सी फैक्टरी डाल दे, ताकि वहाँ के पढ़े-लिखे लोगों को रोजगार दे सके। इसके लिए वह मन में कई योजनाएँ बनाता रहा, लेकिन कोई उचित अवसर उसे नहीं मिला।

आपदा आने के बाद उसने सुना कि वहाँ पर स्थानीय लोगों का रोजगार खत्म हो गया है। उनकी दुकानें, होटल एवं लॉज सब बाढ़ में बह गए। हजारों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गए हैं।

मन में एक पीड़ा हुई, उसे बरबस अपने पुराने दिन याद हो आए। घर का खर्चा चलाने की वजह से उसे अपनी लाचार बीमार माँ को छोड़कर मुंबई आना पड़ा था और तब से वह मुंबई का ही होकर रह गया था।

वह बीस साल पहले गाँव छोड़कर मुंबई आ गया था। पिता की मृत्यु के पश्चात् अपनी गरीबी के चलते उसे गाँव छोड़ना पड़ा था, इसका दु:ख उसे आज भी है। गाँव में स्थित जूनियर स्कूल से उसने आठवीं कक्षा पास की थी। आगे की पढ़ाई के लिए अल्मोड़ा भेजने की हैसियत माँ की नहीं थी।

गाँव के सोबत चाचा के साथ वह नौकरी करने के लिए मुंबई आ गया था। सोबत चाचा ने उसे यहाँ एक सेठ की कोठी पर लगवा दिया था, तब वह केवल पंद्रह वर्ष का था। दोनों पति-पत्नी थे वे, कोई आस औलाद नहीं थी। शुरू के तीन-चार वर्षों तक वह प्रतिवर्ष पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर गाँव आता-जाता रहा, लेकिन माँ की मृत्यु के बाद फिर वह पूरे पाँच वर्षों तक गाँव नहीं आया था। आता भी किसके पास? माँ रही नहीं, उसके अतिरिक्त उसका उस गाँव में अपना कोई भी नहीं था, न चाचा, न ताऊ।

समय के साथ-साथ उसकी जीवन-धारा भी बदलती चली

गई। इस दौरान अपनी मेहनत और विश्वसनीयता के चलते उसने सेठ और सेठानी का दिल भी जीत लिया था। अब वे उसे नौकर की तरह नहीं अपितु अपने बेटे की तरह से रखने लगे थे। उस दौरान उसने प्राइवेट परीक्षा देकर इंटर की कक्षा भी उत्तीर्ण कर ली थी। पहले सेठानी की मृत्यु हुई और बाद में सेठ भी स्वर्ग सिधार गए। उनकी मृत्यु के बाद ही गोपाल को पता चला कि सेठ अपनी सब धन संपत्ति, जमीन और मकान उसके नाम वसीयत करके चले गए।

अब गोपाल खुद मालिक हो गया था। एक हाईस्कूल और एक शोरूम वृद्ध दंपती उसके नाम कर गए थे। उसने पूरी तरह उनकी जायदाद को सँभाल लिया। वहीं हाईस्कूल में पढ़ानेवाली एक महाराष्ट्रियन लड़की से उसने शादी करके अपनी गृहस्थ जीवन की शुरुआत की। उसकी पत्नी पूरी तन्मयता से उसके काम में उसका हाथ बँटाती।

गोपाल अपने घर और व्यवसाय की जिम्मेदारी व्यवस्थित रूप से निभा रहा था, किंतु अपनी मातृभूमि, अपने गाँव के लिए कुछ करने की चाह उसके दिल को बेचैन करती रहती थी।

उत्तराखंड में आई आपदा से हताहत हुए लोगों के बारे में जब टी.वी., अखबारों के माध्यम से गोपाल जानकारी लेता तो उसके दिल पर जैसे गहरे घाव होते जा रहे थे। उसकी आँखों में गाँव की स्मृतियाँ उभर आईं, प्रकृति ने मानो फुरसत के पलों में पहाड़ों को सजाया हो, हर एक पेड़-पौधा, फूल, नदी, पत्थर, मिट्टी व्यवस्थित तरीके से सजाकर नैसर्गिक सौंदर्य से लवरेज कर दिया हो। गाड़-गदेरों के उछलते-मचलते दूधिया पानी की आवाज हो या बाँज-बुरांश के झुरमुटों में से आती घुघती की 'खुदेड़ कुहुक' या कहीं दूर ऊँची पहाड़ी की धार में सुरसुराती हवा की बयार–सबकुछ कितना सुहाना होता है! सीढ़ीनुमा खेतों में लहलहाती फसलों को जब तेज

हवा छेड़ जाती तो ऐसा लगता, मानो वही हवाएँ फसलों को कंघी करके सँवार रही हों। धारे-पंदेरों में गागर-बंठो की चमक और उस चमक के साथ पनिहारनों की खनकती हँसी-ठिठोली, हिंसर की झाड़ी में छोटे बच्चों की टोलियाँ और उनमें इस बात की प्रतिस्पर्धा कि किसने ठेकी (स्टील के डिब्बे) में ज्यादा हिंसर निकाले, फिर सबको इकट्ठा करके टोलीनायक का बाँटना, काँटों से छिदे हाथों में उस वक्त तो दर्द नहीं होता था, पर जैसे ही घर में हाथ-मुँह धुलने लगे तो वह 'चिरमिराहट' हिंसर खाने की मेहनत को बयाँ कर देती। बसंत ऋतु में फुल्यारों का घर-घर जाकर फूल डालना...दाल-चावल माँगना और बदले में ढेरों दुआएँ देना...दु:ख की घड़ी में सारे गाँव का इकट्ठा होना...खुशी में सारे गाँव का झूमना कितनी आनंद की अनुभूति होती है यह सब देखकर!

बाहर ड्राइवर इंतजार कर रहा है।

मृणाली ने गोपाल से कहा तो जैसे वह किसी सुखद स्वप्न से जाग उठा।

''अरे तुम?'' गोपाल ने आश्चर्य से पूछा।

''तुम मतलब? कहाँ खो गए थे आप?''

सवाल का जवाब सवाल से किया मृणाली ने।

एक लंबी आह भरते हुए गोपाल ने कहा,

''अपने गाँव की यादों में था मृणाली, तुम नहीं जानतीं, जो शांति, जो अपनापन और जो आत्मीयता हमें गाँव में मिलती है, वह दुनिया के किसी छोर पर नहीं मिलती।''

लेकिन अगले ही पल उसका खिलखिलाता चेहरा मायूस हो गया। वह तो अतीत को याद करके खुश हुआ जा रहा था; लेकिन वर्तमान...वह तो बहुत भयावह है, जो गाँव कभी कुदरत की खुबसूरत कृति हुआ करता था, वही आज काल का ग्रास बन गया।

एकाएक गाँव के क्रंदन, रुदन, चीख-चिल्लाहट, लाचारी-बेबसी··· गोपाल के मनोमस्तिष्क में गूँजने लगी।

''मृणाली, तुम अपना और बच्चों का खयाल रखना।'' कहकर गोपाल खड़ा हुआ।

मृणाली ने दही और चीनी खिलाकर, हलदी का टीका लगाकर गोपाल के उद्देश्य के लिए शुभकामनाएँ दीं और साथ-ही-साथ अपना खयाल रखने को भी कहा।

आपदा पीड़ितों की मदद करने के उद्देश्य से वह आपदा के एक सप्ताह बाद मुंबई से दिल्ली चला आया। दिल्ली से उसने रोजमर्रा की जरूरतों की वस्तुएँ—कपड़े, जूते, छाते, बिस्कुट, चाय, चीनी, मसाला, तेल आदि खरीदकर एक ट्रक के द्वारा ऊखीमठ के लिए भिजवा दिया और खुद कार बुक करके ट्रक के आगे निकल गया।

रुड़की पहुँचते ही उसे भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा, जब बॉर्डर पर पुलिस ने ट्रक को रोक दिया। यह बताने पर भी कि इसमें आपदा पीड़ितों के लिए जरूरत का सामान है, पुलिसवालों ने पूरा सामान खँगाल डाला। सेल टैक्स और इनकम टैक्स के कागज तक माँगे। सारा कुछ दिखाने के बाद सिपाही ने ड्राइवर से गाड़ी के कागज और ड्राइविंग लाइसेंस दिखाने के बहाने एक ओर बुलाया। ड्राइवर वापस आया तो 'सबकुछ ठीक है' कहकर सिपाही ने ट्रक आगे जाने दिया।

''क्या समस्या हुई थी?'' गोपाल ने ड्राइवर से पूछा।

''नहीं साहब, कुछ ज्यादा नहीं, बस सौ रुपए से काम चल गया।'' ड्राइवर ने कहा और आगे चल दिए। गोपाल आगे तो बढ़ा, लेकिन जो कुछ भी वहाँ घटित हुआ, उसने मानो गोपाल को वहीं रोक दिया।

'क्यों···क्यों कर रहे हैं ये लोग ऐसा? वह भी इस समय

जबकि पूरा राज्य आपदा के दर्द से कराह रहा है, कहाँ गई इनकी मनुजता?' मन तो कर रहा था कि दो तमाचे जड़ दे उस पुलिसवाले को, पर अपने गुस्से को नियंत्रण में रख खामोश रहा गोपाल। बहुत कुछ उथल-पुथल मच रही थी गोपाल के मन में और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि जिस मिशन को लेकर वह मुंबई से आया था, उसने सोचा था कि रास्ते में लोग उसकी सराहना कर मदद करेंगे, लेकिन यह तो बिलकुल विपरीत हो रहा था। आगे के रास्ते को लेकर मन संशय में था, फिर भी मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि आगे कोई समस्या न आए।

गंतव्य की ओर बढ़ते हुए वह रुद्रप्रयाग आ पहुँचा। गुलाबराय बाईपास पर पुलिसवालों ने गाड़ी को रोका तो गोपाल का गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया, वह जैसे ही सौ का नोट बढ़ाकर उस दरोगा के पास गया और कुछ कहने ही लगा कि दरोगा ने आगे आकर उसका अभिवादन किया।

''बहुत-बहुत धन्यवाद सर! आप इतने दूर से आकर यहाँ पर राहत सामग्री पहुँचा रहे हैं, कहीं कोई समस्या होगी तो हमें फोन करिएगा, अपना नंबर हमने आपके ट्रक ड्राइवर को दे दिया है।''

दरोगा के मुँह से ये शब्द सुनकर अवाक् रह गया गोपाल। एक बार को उसे लगा कि वह कल्पना में है, लेकिन नहीं, यह सच था। ऐसा सच, जिसने गोपाल के मन में चल रही शंकाओं के ज्वालामुखी को शांत कर दिया। एक ही तंत्र और दो अलग-अलग रूप। वह सोचे जा रहा था कि दरोगा ने उसकी एकाग्रता को भंग करते हुए कहा, ''सर, मैं आपसे कह रहा हूँ...।''

''ओह...।'' अपना ध्यान भंग करते हुए गोपाल के मुँह से निकला।

''थैंक्यू सर, सहयोग के लिए धन्यवाद।'' गोपाल बोला।

''धन्यवाद तो आप लोगों का सर, जो इतनी दूर से आकर यहाँ पीड़ितों की मदद कर रहे हैं।'' दरोगा बोला।

''नहीं-नहीं, इसमें धन्यवाद कैसा? दुःख के ऐसे बुरे दौर में यह हमारा फर्ज बनता है कि हम पीड़ितों की हरसंभव मदद कर सकें।'' गोपाल ने कहा।

''अच्छी बात है सर, आपकी यात्रा शुभ हो।'' दरोगा बोला।

उनसे विदा लेकर पहले से ज्यादा आत्मविश्वास से भरकर गोपाल अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा।

उसे सुकून था और खुशी भी कि उसके मन में जो भी संशय था, वह निराधार था, बल्कि उसके काम की सराहना कर उसके डगमगाते आत्मविश्वास को दृढ़ता मिल गई थी। रास्ते भर गोपाल यही सोचता रहा कि रुड़की के पास पुलिसवालों के व्यवहार ने पूरे विभाग के लिए गोपाल के मन में नकारात्मक सोच पैदा कर दी थी। उसका मन खुद से ही प्रश्न कर रहा था कि लोगों की सुरक्षा और सहायता देने का जिम्मा जिन लोगों को सौंप रखा है, वे खुद ही इतने गैर-जिम्मेदार कैसे हो सकते हैं? वह भी ऐसे हाल में, जबकि पूरा विश्व घायल उत्तराखंड के जख्मों पर हरसंभव मरहम लगा रहा है। उसको सहारा देने की पूरी ताकत लगा रहा है। ऐसे समय में कोई मानवीय संवेदनाओं के साथ ऐसा खिलवाड़ कैसे कर सकता है? लेकिन रुद्रप्रयाग पहुँचते ही उसके सारे सवाल शून्य में जाने कहाँ खो गए।

नहीं-नहीं, मैं गलत सोच बैठा था। किसी व्यक्ति की अशिष्टता को मैं पूरे विभाग पर क्यों थोपूँ। यहाँ भी तो यह दरोगा उसी उद्‌देश्य से तैनात है, लेकिन इसकी सोच कितनी अलग है उससे। कितना सहृदय है यह। एक ही विभाग के दो विरोधाभासी अनुभवों से रू-ब-रू होने के बाद गोपाल को एहसास हो गया कि प्रशासनिक

व्यवस्थाएँ जनहित के लिए ही बनी हैं। वह उस व्यवस्था के अंदर कार्य करनेवाले व्यक्ति विशेष की कार्यशैली और उसके व्यवहार पर निर्भर करता है कि उस जगह पर उसके विभाग की कैसी छवि आम जनमानस में बनती है।

अपने इन्हीं गहन विचारों में खोए गोपाल को पता ही नहीं चला कि कब ऊखीमठ आ गया। शाम का समय था, वह चाह रहा था कि राहत सामग्री को जल्दी-से-जल्दी स्टोर में रखवाए, ताकि सामग्री का वितरण शुरू हो जाए।

स्टोर-कीपर के पास जाकर गोपाल ने कहा, ''भइया, मुंबई से राहत सामग्री लाए हैं, इसे उतरवा लीजिए।''

''डाल दो अंदर एक जगह पर।'' स्टोर-कीपर लापरवाही से बोला।

गोपाल अंदर जगह देखने गया तो उलटे पाँव बाहर आ गया। उसने रूमाल से अपनी नाक और मुँह ढक लिया। ''कितनी दुर्गंध आ रही है अंदर! पूरी राशन सामग्री सड़ रही है।'' गोपाल बोला।

''भाई, आपको सामान रखना है तो रखो, वरना कहीं और जाकर डलवा दो।'' स्टोर-कीपर का रूखापन गोपाल को अच्छा नहीं लगा।

आखिर क्यों सड़ रहा है यह राशन यहाँ? जरूरतमंदों को क्यों नहीं पहुँचाया जा रहा? कई प्रश्न एक साथ खड़े हुए गोपाल के मन में, जिनका उत्तर उसके पास तो था नहीं और जिनसे उसे जानना था, वह सीधे मुँह बात करने को तैयार न थे।

''ठीक है, तब तक आप इस सामान को कहीं तो रखवाइए, ट्रक खाली तो करना ही पड़ेगा।'' गोपाल ने अपनी लाचारी बताई।

''तो ठीक है, ऊपर ब्लॉक हेडक्वार्टर में डाल दो सारा सामान।'' स्टोर-कीपर ने लापरवाही से कहा।

ब्लॉक में पहुँचकर तो गोपाल का सिर ही घूम गया। वहाँ तमाम कमरों में ऐसी राहत सामग्री पहले से ही बेतरतीब ठुसी पड़ी थी, कुछ खाद्य सामग्री तो सड़ भी गई थी और उसके कारण अन्य सामान भी खराब हो रहा था। सभी कमरे बदबू से भरे हुए थे। जूते, चप्पल, कंबल, बंद, बिस्कुट, नारियल, केले, दवाई एवं कपड़े सब आपस में ऐसे गड्डमड्ड हो रहे थे कि कौन सा सामान क्या है, कुछ पता ही नहीं चल रहा था।

''चंदू, गाड़ी मोड़ ले।'' गंभीर होकर गोपाल ने कहा।

''कहाँ साहब?'' ड्राइवर बोला।

''कहीं भी जाएँगे, लेकिन यहाँ बिलकुल नहीं।'' गोपाल ने एक साँस में बोला।

चंदू ने भी गाड़ी मोड़ी, चल पड़े अनिर्धारित रास्ते पर। एक बार फिर गोपाल अशांत हो गया। कहाँ जाएँ? किससे बात करें? यह जगह तो उसके लिए बिलकुल अनजान है। वह किसी को जानता तक नहीं यहाँ।

एक जगह ट्रक रुकवाकर उसने ड्राइवर से चाय पीने को कहा, 'चंदू, कुछ देर यहीं रुक जाते हैं, थकान महसूस हो रही है।'' ट्रक से उतरकर दरवाजा बंद करते हुए गोपाल बोला।

''ठीक है साहब।'' चंदू ने कहा।

ढाबे में दो चाय बनवाने को कहकर गोपाल सड़क के किनारे नदी की तरफ मुँह किए खड़ा हो गया। सोच रहा था कि क्या करे? कैसे इस सामान को आपदा पीड़ितों तक पहुँचाए? ढाबे में चाय बना रहे संदीप ने गोपाल के ड्राइवर से पूछा, ''भाई, कहाँ से आए हो?''

चंदू बोला, ''मुंबई से।''

संदीप ने कहा, ''उधर वह भाई साहब परेशान लग रहे हैं। क्या बात है?''

''अरे भाई, परेशान होने की तो बात ही है। गोपालजी मुंबई से यहाँ यह सोचकर आए कि आपदा पीड़ितों को राहत पहुँचाने में यहाँ उन्हें कोई समस्या नहीं होगी, लेकिन यहाँ का तो बहुत बुरा हाल है। राहत सामग्री की कोई कद्र ही नहीं। कितनी बेतरतीब ढंग से रखी है स्टोर में, सड़ने लगी है, पर कोई बाँटने को तैयार नहीं, हमें भी वहीं स्टोर में रखने को कह रहे थे, लेकिन हम वहाँ से इधर आ गए। अब आप ही बताओ, हम क्यों रखें इस सामग्री को स्टोर में सड़ाने के लिए? लेकिन आगे हमें कहाँ जाना है? और किस गाँव में यह सामग्री देनी है—कुछ पता नहीं है। इसलिए भाईजी परेशान हैं।''

अपनी सारी व्यथा ढाबेवाले को बता दी थी चंदू ने।

''भाई, आपसे एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे?'' सकुचाते हुए संदीप ने कहा।

''नहीं, बुरा क्यों मानेंगे हम, कहिए, क्या कहना चाह रहे हो?''

''मैं आपको एक सलाह देता हूँ, जिससे आपकी राशन सामग्री खराब भी नहीं होगी और जिन जरूरतमंदों तक आप यह सामग्री पहुँचाना चाह रहे हैं, उन तक पहुँच भी जाएगी।''

''कैसे?'' तुरंत चंदू बोला।

इतने में बात करते-करते चाय के दो गिलास लेकर संदीप ने एक तो चंदू को दिया और दूसरा गिलास देने के लिए गोपाल को आवाज लगाई, ''भाईजी, चाय वहीं पर लाऊँ?''

''नहीं-नहीं, मैं आ रहा हूँ।'' गोपाल ने कहा। और वह भी ढाबे के अंदर एक कुरसी पर बैठ गया। अभी उसकी उधेड़बुन खत्म नहीं हुई थी, परेशानी की लकीरें उसके माथे पर साफ-साफ दिख रही थीं।

‘‘साहब, यह लड़का हमें कुछ मदद करना चाह रहा है।’’ चंदू ने बिना समय गँवाए गोपाल से संदीप की बात रख दी।

गोपाल को लगा, जैसे उसकी परेशानी को ईश्वर साक्षात् देख रहा है और उसकी मदद के लिए उसने फरिश्ता भेजा है।

‘‘क्या नाम है तुम्हारा?’’ गोपाल ने पूछा।

‘‘जी, संदीप।’’ ढाबेवाले ने कहा।

‘‘हाँ संदीप, तो हम कैसे इस सामग्री को पीड़ितों तक पहुँचा सकते हैं?’’

‘‘सर, मेरी राय यह है कि आज रात आप इसी ढाबे में रुक जाएँ। यह होटल तो नहीं है, लेकिन मेरा घर ढाबे के पीछे ही है। आप घर में ही ठहरिएगा। कल सुबह मैं अपने साथ तीन-चार लड़कों को लेकर आपके साथ राहत सामग्री बाँटने चलूँगा। हम लोग खुद ही यह सामग्री पीड़ित व्यक्तियों तक पहुँचाएँगे। सर, सरकारी अमले के भरोसे इस पर फफूँदी लग जाएगी, लगभग दो दिन में हम इसे पूरा बाँट देंगे।’’

गोपाल की तो मानो मुराद पूरी हो गई। संदीप के सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर उसने निश्चय किया कि आज रात संदीप के घर पर ही रुककर कल सुबह अपने मिशन को पूरा करने चल पड़ेंगे।

सारी रात संदीप के घरवालों और गोपाल के बीच आपदा में हुई तबाही की ही चर्चा चलती रही। उस पर व्यवस्थाओं की कमी, बिजली, पानी, संचार, रास्ते—सब ठप पड़े थे। उनकी आपबीती सुन भावुक हो उठा गोपाल…।

सुबह चाय-नाश्ता करके संदीप के साथ गोपाल निकल पड़ा अपने मिशन को पूरा करने। संदीप ने गाँव से ही चार लड़कों को बुलाया था, जो सामग्री बाँटने में गोपाल की मदद करेंगे।

करीब एक घंटे के बाद संदीप ने एक गाँव के नीचे गाड़ी

खड़ी करने को कहा। ट्रक से उतरकर उसने गोपाल से कहा, ''सर, यह वह गाँव है, जहाँ अभी तक किसी भी प्रकार की सहायता नहीं पहुँची। अगर आप इजाजत दें तो यह राहत सामग्री यहीं बँटवा दें।''

''हाँ-हाँ, क्यों नहीं?'' गोपाल ने तुरंत उत्तर दिया, ''लेकिन इतने दिन गुजरने के बाद भी इन लोगों तक एक बार भी राहत सामग्री क्यों नहीं आई?'' अगले ही पल संदीप से सवाल किया गोपाल ने।

''सर, जो भी राहत सामग्री बाहर से आ रही है, वह केवल जिला मुख्यालयों या ज्यादा-से-ज्यादा ब्लॉक तक पहुँचाई जा रही है। उससे आगे चलने में लोग खतरा महसूस कर रहे हैं। इसलिए राहत के नाम पर केवल स्टोरों को भर रहे हैं। वह राहत लोगों तक पहुँच भी रही है या नहीं, इसकी सुध कोई नहीं ले रहा। सड़कों से सटे गाँव के लोगों को तो कई बार राशन और अन्य राहत सामग्री बाँटी गई, लेकिन सुदूरवर्ती इन गाँवों में, जहाँ एक ओर ये लोग कुदरत के कहर की मार झेल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर किसी सहारे की उम्मीद ना मिलने से इन लोगों के जीने की इच्छा मर गई है। मैं एक हफ्ते पहले यहाँ आया था। यहाँ इनकी हालत देख दिल तो पसीजा, लेकिन मैं क्या कर सकता था। मेरी इतनी गुंजाइश नहीं है कि मैं इन्हें राहत दे पाता। जब आपके ड्राइवर ने आपके साथ हुए घटनाक्रम का जिक्र किया तो एकाएक मुझे इस गाँव का ध्यान आया। मुझे लगा, जैसे ईश्वर ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और आप लोगों को माध्यम बनाकर मुझे सेवा करने का मौका दिया है।''

बड़ी ही सहजता और विनम्रता से अपनी बात कहता गया संदीप।

कहते हैं कि कोई काम मुश्किल नहीं होता, जरूरत होती है

तो दिल में काम करने की इच्छाशक्ति और बुलंद हौसलों की। किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहाँ एक कदम हम बढ़ाते हैं तो ईश्वर दो कदम बढ़कर हमारी मदद करता है और जिस काम को पूरे दिलोजान से करने की ठान लो तो कायनात भी उसे पूरा करने में आपका साथ देती है। किन-किन रूपों और किस माध्यम से, यह हमें स्वयं भी ज्ञात नहीं होता।

दोनों ने मिलकर उन चार लड़कों, ड्राइवर की मदद से राहत सामग्री पीड़ितों के घर तक पहुँचाई। कई ऐसे परिवार थे, जहाँ युवा लड़के घर में थे, वे स्वयं अपनी सामग्री ले जा रहे थे, लेकिन ज्यादा ऐसे घर थे, जिस घर में एक भी पुरुष न था। घर पर सास, बहू और पोती थीं।

जून में ग्रीष्मावकाश होने के कारण छोटे-छोटे लड़के भी एक महीने केदारनाथ यात्रा में अपने जेबखर्च के लिए कमाने चले जाते हैं, पर इस बार के मनहूस जून ने उन्हें वापस लौटने का मौका नहीं दिया। ऐसे घर में 15-20 दिनों से चूल्हा तक न जला था। किसी को सुध नहीं थी कि यह दिन है या रात, गहरे सदमे के कारण केवल अपने बेटे, पति, भाई को ही पुकारते रहते थे। ऐसी स्थितियों से रू-ब-रू होने के बाद गोपाल की आँखें छलछला आईं। कहने लगा, ''हम इनके बेटे को वापस तो नहीं ला सकते, लेकिन बेटे होने का फर्ज तो निभा सकते हैं।'' उसने संदीप और चंदू को बुलाकर निश्चय किया कि वह कुछ दिन यहीं रहेगा और ऐसे लोगों का सहारा बनेगा। उन्हें खाना अपने हाथों से खिलाकर खड़ा करेगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी तो ये लोग अपने जीवन को सामान्य बना पाएँगे। इस गाँव में आकर गोपाल को एक नया उद्देश्य मिला।

आज वह बहुत सुकून महसूस कर रहा था, साथ-ही-साथ

ईश्वर का धन्यवाद भी कर रहा था कि संदीप से मिलकर उसके इस पुनीत कार्य को सही दिशा मिल गई। अब गोपाल अपनी पूरी टीम के साथ पूरी तल्लीनता और तन्मयता से आपदा पीड़ितों की सेवा में जुट गया था। आज उसे अपने आप पर गर्व हो रहा था कि सही मायने में वह अपने पहाड़ के लिए कुछ अच्छा सोच रहा है, अच्छा कर रहा है।

□

घर वापसी

सबकी आँखों का तारा बन गया था वह। विपत्ति की इस घड़ी में सबने उसका एक अनोखा रूप देखा था। सबकी मदद करनेवाला, दूसरों के जीवन के लिए अपनी जान की बाजी लगानेवाला, खुद भूखा रहकर दूसरों का पेट भरनेवाला, अपनी चिंता छोड़कर दूसरों के लिए खपनेवाला। और भी कई-कई रूप देखे थे लोगों ने उसके इस आपदा के दौरान। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि यह वही जग्गू है, जिससे गाँव के ही नहीं वरन् सारे इलाके के लोग परेशान रहा करते थे।

कितना परिवर्तन आ गया है उसमें संवेदनाओं का। सच ही कहते हैं कि जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जो इनसान का जीवन बदलकर रख देती हैं। इस आपदा ने जग्गू का भी पूरा जीवन ही बदलकर रख दिया है।

कल तक हर किसी के लिए मुसीबत पैदा करनेवाला जग्गू आज सबके लिए मसीहा जैसा बन गया था। कौन सोच सकता था कि यह वही जग्गू है। सचमुच किसी को भी विश्वास नहीं होता है अपनी आँखों पर। पर सच यही है कि उसने इस महाआपदा में एक नहीं अपितु हजारों लोगों की जान बचाई है।

मलसारी गाँव के रिटायर्ड हवलदार जबर सिंह का एकमात्र लड़का है जग्गू। सेना की नौकरी के दौरान एकमात्र संतान होने के

कारण जबर सिंह ने कभी बेटे की गतिविधियों पर ध्यान नहीं दिया। गाँव में रह रही उसकी माँ के लाड़-प्यार ने बचपन में ही जग्गू को बिगाड़ दिया। साल में एक बार जबर सिंह जब एक महीने की छुट्टी लेकर आता तो जग्गू की सारी फरमाइशें पूरी करता। उसके लिए कोई कमी नहीं रहने देता था। अति लाड़-स्नेह और सुविधाओं ने जग्गू को अन्य बच्चों की अपेक्षा कुछ अलग बना दिया। वह दंभी और हठी हो गया। धीरे-धीरे वह बिगड़ैल होता चला गया। हाईस्कूल में जाते-जाते वह तीन बार फेल हो गया, फिर उसने पढ़ाई भी छोड़ दी।

जबर सिंह जब सेना से रिटायर्ड होकर आए तो लड़का हाथ से निकल चुका था। अब वह समझाने पर भी नहीं समझता था। गलत आदतों के चलते उसने पहले घर में और फिर बाद में गाँव में भी चोरी-चकारी शुरू कर दी। बेचारे जबर सिंह की इज्जत जब मिट्टी में मिलने लगी तो उसने उसे घर से ही निकाल दिया।

''देखना, एक-न-एक दिन मैं ही तुम्हारे काम आऊँगा।'' घर से जाते वक्त धमकी के अंदाज में बोलकर गया था वह पिता से।

''जिस दिन मुझे तेरी मदद की जरूरत पड़ेगी, उस दिन मैं मर जाना पसंद करूँगा।'' गुस्से में ही कह दिया था जबर सिंह ने भी।

और फिर जग्गू चला गया।

''बैठे-बैठे मुफ्त की रोटी लग गई तुझे, चार दिन भूखा मरेगा तो अक्ल ठिकाने आ जाएगी तेरी।'' जबर सिंह उसके जाने के बाद भी न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता रहा।

''अब किसे सुना रहे हो जी? वह तो चला गया, क्या फायदा अपना दिमाग गरम करके।'' दु:खी पत्नी बोली थी।

दो साल तीन महीने तक वह ऊखीमठ बाजार में ही रहा। यार-दोस्तों के संग खूब मौज-मस्ती करते हुए वह दुकानदारों को

धमकाता और पैसे वसूल करता। अब धीरे-धीरे उसके किस्से गाँव और बाजार से निकलकर पूरे क्षेत्र में फैल गए थे। लोगों में उसका खौफ छा गया था। जग्गू के नाम से ही लोग काँपने लगते।

दबी जुबान से ये बातें लोग जबर सिंह के कानों में भी डालते। वह बेचारा इसे अपने कर्मों का फल मानकर चुप्पी साध लेता। इसके अलावा और कर भी क्या सकता था। जिंदगी भर देश की सेवा करने के बावजूद वह गाँव में सिर उठाकर चलने के काबिल नहीं रहा था। उसकी उम्र भर कमाई हुई इज्जत उसके बेटे के कर्मों ने तार-तार करके रख दी थी।

जिस रात जल-प्रलय आई, उसके एक दिन पहले वह केदारघाटी में ही अपने दोस्तों के साथ घूमने गया था। भगवान् के प्रति उसके मन में कोई श्रद्धा नहीं थी। वह तो बस सैर-सपाटे के लिए दोस्तों के साथ यहाँ आ गया था। जोशीमठ, ऊखीमठ, गुप्तकाशी और गौरीकुंड के बाजारों में सब होटलों और रेस्टोरेंटों के दरवाजे उसके लिए हरदम खुले रहते थे। वह कभी भी किसी भी होटल में जा धमकता और अपने मनपंसद कमरे की चाबी माँग लेता, होटल मालिक उसे चुपचाप चाबी थमा देते। इसी तरह वह किसी भी रेस्टोरेंट में बैठता तो मालिक खुद उसकी टेबल पर आकर पूछता, ''क्या सेवा करूँ भाईजी?'' बस यों समझो कि ऐश-ही-ऐश थे उसके।

उस दिन भी वह गौरीकुंड के एक बड़े होटल में ठहरा था। सुबह जैसे ही उसकी आँख खुली तो उसे भारी कोलाहल सुनाई दिया। बाहर आकर देखा तो नदी में बाढ़ आ चुकी थी। नदी का जलस्तर इतना बढ़ गया था कि वह अपने किनारे बसे घरों और मकानों को बहाकर ले जाने लगी।

एक-एक कर मकान-दुकान ऐसे ढह रहे थे, मानो ताश के पत्तों से बने हुए हों, लोग किसी तरह से अपनी जान बचाने की चिंता में

इधर-उधर दौड़ रहे थे।

आज न जाने जग्गू के मन में क्या विचार आया। अब तक वह हमेशा लोगों को सताने और डराने में सुख महसूस करता आया था। इस सुख में वह प्रसन्नता को ढूँढ़ता रहा, लेकिन उसे धीरे-धीरे यह महसूस होने लगा था कि सुख तो किसी वस्तु से या घटना से प्राप्त हो सकता है, लेकिन उससे प्रसन्नता प्राप्त हो, यह जरूरी नहीं है। प्रसन्नता तो एक अहसास है, जो आत्मा के गहरे तक उतरता है। वह इसी मृगतृष्णा में भटकता रहा, लेकिन उसे प्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई। होती भी कैसे, सुख तो क्षणिक है। एक सुख मिलने पर आदमी दूसरा सुख ढूँढ़ता है, लेकिन प्रसन्नता स्थायी होती है, जो किसी अच्छे कार्य को करने से ही मिलती है।

उसे न जाने क्या सूझा कि वह उफनती नदी में कूद गया। नदी में बह रहे लोगों को एक-एक कर बाहर निकालता रहा। उसने न जाने कितने लोगों की जान बचाई होगी, गिनती उसे भी याद नहीं। वह तब तक लोगों को बाहर निकालता रहा, जब तक खुद बेहोश नहीं हो गया।

होश आया तो अपने को उसी होटल में पाया, जहाँ वह दोस्तों के साथ रुका हुआ था। वह फिर निकल पड़ा। लोगों के जत्थों को वह सुरक्षित स्थानों पर भेजता रहा, कुछ बीमारों और बुजुर्गों को कंधों पर लादकर अस्पताल तक पहुँचाता रहा। इस काम में उसके दोस्त भी साथ देते रहे।

पूरे एक महीने तक वह आपदा पीड़ितों की मदद करता रहा। उसे अब सचमुच ऐसी प्रसन्नता का अहसास हो रहा था, जिसको पाने के लिए वह वर्षों से उलटे-सीधे काम कर रहा था। सिर्फ एक जगह ही नहीं, वह जगह-जगह घूमकर यात्रियों और बेघर-बार लोगों के लिए भोजन और कपड़ों का प्रबंध करता। अब तक प्रशासन भी सक्रिय हो चुका था। अब वह प्रशासन के माध्यम से पीड़ितों की सेवा कर

रहा था। कहीं राशन पहुँचाना तो कहीं टैंट पहुँचाना, कहीं दवाई तो कहीं कंबल। अपने कंधों पर ढो-ढोकर वह साथियों के साथ पूरे इलाके में सामान पहुँचाता और गरीब-असहायों की भी मदद करता।

लोग उसके इस बदले हुए व्यवहार से हतप्रभ थे। वह सबकी आँखों का तारा बन गया था। लोग अब उससे डर नहीं रहे थे, बल्कि उसे प्यार कर रहे थे। पूरे इलाके में बस उसी के नाम की चर्चा थी।

जबर सिंह ने सुना तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। दोनों पति-पत्नी गुप्तकाशी बाजार कुछ सामान खरीदने आए थे तो उन्हें जग्गू एक बुजुर्ग को पीठ पर लादे अस्पताल ले जाता हुआ दिख गया। दोनों उसके नजदीक पहुँचे।

जबर सिंह समझ नहीं पाया कि क्या कहे।

जग्गू ने पिता के पाँव छुए और लज्जित स्वर में बोला, ''पिताजी, मुझे माफ कर दो।''

''चलो बेटा, वापस घर लौट चलो।'' भीगी हुई आँखों से माँ ने उसे गले लगाते हुए कहा।

नजरें झुकाए जग्गू बोला, ''मैं लौट आया हूँ माँ! भटक गया था, किंतु अब घर लौट आया हूँ।''

जबर सिंह का सीना आज फिर चौड़ा हो गया था।

□

जिंदगी रुकती नहीं

लगभग पाँच महीने, हाँ, पाँच महीने तो हो ही गए तब से। मैं इस ओर नहीं आया था। पाँच महीने पूर्व प्रकृति की इस भीषण विभीषिका में कहीं गुम हो गए अपनों की तलाश में यहाँ आना हुआ। पहले भी अपने प्रोजेक्ट के सिलसिले में इस दुर्गम पहाड़ी इलाके में मेरा आना-जाना होता रहता था। घूमने का शौकीन होने के कारण जब भी मौका मिला, मैंने आस-पास की पहाड़ियाँ, झीलें, सुरम्य घाटियाँ सब नाप डालीं। दुर्गम पहाड़ियों पर हाँफते-काँपते चढ़कर जब सामने का दृश्य नजर आता तो सारी थकान गायब हो जाती। कभी लगता, सरकार ने इन पगडंडियों को सीमेंट-गारे से बनी पक्की सड़क का रूप क्यों नहीं दिया और सुविधाएँ क्यों नहीं बढ़ाईं, लेकिन दूसरे ही पल खूबसूरत हिल स्टेशनों पर बढ़ता हुआ कंक्रीट का जंगल याद आता।

इससे तो यही अच्छा है। कम सुविधा होगी, तो कम लोग आएँगे। कम-से-कम पर्यावरण प्रदूषित तो नहीं होगा। मुझे याद है, दो वर्ष पूर्व जब मैं पहाड़ियों की चोटी पर स्थित एक गाँव में गया था। वहाँ का अद्‌भुत सौंदर्य किसी प्रकृतिप्रेमी को बौरा देने के लिए काफी है। वहाँ पहुँचते ही दिखनेवाले दुग्ध-धवल हिमशिखर और स्वच्छ निर्मल ताल के हरे-नीले जल पर पड़ती उनकी छाया, ऐसा दृश्य देख किसका मन वश में रहेगा। पास के ही गाँववालों ने टैंट

उपलब्ध करा दिए। रात का नजारा और भी स्वप्निल और आनंद से भरा था। स्वच्छ आकाश में टिमटिमाते तारों की छवि ताल के जल में पड़ने पर वे और अधिक टिमटिमा उठते। जैसे बड़े से थाल में जुगनू जगमगा रहे हों। लेकिन अब प्रकृति का यह कैसा कहर टूट पड़ा इस सुरम्य धरती पर। कठोर चट्टानों की भाँति खड़े ये पहाड़ क्यों रेत के घरौंदे की तरह दरकने लगे? क्यों यह विनाश लीला हजारों लोगों की जिंदगी और जीने का सहारा भी बहा ले गई?

मेरे एक अभिन्न मित्र के माता-पिता तीर्थयात्रा के लिए केदारनाथ आए थे। जैसे ही इस महाविनाश की खबर मिली, मित्र मुझे साथ ले चल पड़ा। ऋषिकेश से आगे बढ़ते ही प्रकृति का रौद्र रूप सामने था, गंगा में वर्षों से तनकर खड़ी शिवमूर्ति उसी में समा चुकी थी। ऋषिकेश से आगे वर्षों से गंगा में राफ्टिंग कैंप चलते हैं। रंग-बिरंगे राफ्ट पहाड़ों से इठलाती, बलखाती नदी में चलते तो राफ्ट में बैठे लोगों के साथ-साथ देखनेवालों का कलेजा भी मुँह को आता और नदी के किनारे रेतीले मैदानों पर लगते छोटे-छोटे टैंट। इस क्षेत्र में राफ्टिंग का व्यवसाय धीरे-धीरे जड़ें जमाने लगा और आस-पास के लोगों का प्रमुख पर्यटन व्यवसाय बन गया।

अब नदी किनारे के रेतीले मैदान तो गायब ही हो चुके थे, जहाँ देखो—पानी-ही-पानी। सारे टैंट बह चुके थे, सारी राफ्ट बह चुकी थीं। ऐसा लग रहा था जैसे पुराणों में वर्णित जल-प्रलय का यही स्वरूप रहा होगा। कामायनी में प्रसादजी ने जिस जल-प्रलय का जिक्र किया है, क्या वह ऐसी ही रही होगी?

उधर गरजती सिंधु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी चली आ रही फेन उगलती फन फैलाए बालों सी। क्या उस प्रलय का दृश्य भी ऐसा ही होगा, जैसा इस वक्त यहाँ दिखाई दे रहा था।

इन छोटे-छोटे व्यवसायियों का कितना नुकसान हुआ होगा

इस समय। इनकी तो आजीविका का साधन ही समाप्त हो गया।

इस विनाशलीला के पंद्रह-बीस दिन पहले ही मैं आया था तो सड़कों पर कई जगह पर दोनों ओर वाहनों की कतारें लगी थीं। यहाँ भीड़ राफ्टिंग के लिए अपनी-अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रही थी। राफ्टिंग के लिए इतनी भारी संख्या में भीड़ मैंने पहले कभी नहीं देखी, लेकिन अब वहाँ पर कोई कभी आया भी होगा, ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा था। दोनों समय में से कोई एक तो निश्चित रूप से सपना सा लगता, या तो रंग-बिरंगे टैंट और राफ्ट से भरे नदी तट या फिर पहाड़ों को छूने को लालायित उफनती नदी का वेग।

'क्या ये लोग कभी हिमालय से ऊँचे इन दु:खों के पहाड़ से उबर पाएँगे?' मन में स्वत: ही प्रश्न उठा।

हम दोनों मित्र बहुत दूर तक नहीं जा पाए। आगे सड़कों का नामो-निशान मिट चुका था। थक-हारकर वापस लौटे निराश, हतोत्साहित। जो कुछ सुना, वह भयावह था। मित्र के माता-पिता उस प्रलय की रात वहीं थे। सुना है, बहुत से लोग जान बचाने के लिए पास के जंगलों में भाग गए। क्या वे भी जा पाएँ होंगे या पानी, मलबे और पत्थरों के उसी रेले में कहीं…? नहीं! मन में ऐसा विचार आते ही रोंगटे खड़े होने लगे। लगा—जैसे उनकी घुटती हुई साँसों को मैं स्वयं महसूस कर रहा हूँ। सीने पर ढेर सारा बोझ लिये मित्र वापस लौट गया। तब से पाँच महीने बीत गए, लेकिन मित्र की उम्मीद नहीं टूटी।

"सुना है, कुछ लोगों को न सेना वापस ला पाई और न ही सरकार। वे वहीं भटक रहे हैं। कुछ लोग टी.वी. पर दिखाए गए दृश्यों में दिखे, लेकिन अपने गंतव्य तक न पहुँचे, क्या पता अम्मा-बाबूजी भी उनमें हों। अब तो स्थिति थोड़ा ठीक है। चल न, एक बार फिर चलते हैं वहाँ।" मित्र ने अभी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा था।

मैं न नहीं कर सका। छात्रावास के दिनों में अपने इस स्थानीय मित्र की माँ के हाथ का, घर के बने स्वादिष्ट खाने का स्वाद अभी तक जिह्वा पर रचा-बसा था। और हम निकल पड़े एक और सफर की ओर। ऋषिकेश से कुछ दूर पहुँचते ही सुखद आश्चर्य से मेरी आँखें फटी रह गईं। नदी का वेग सामान्य हो चुका था, आकाश छूने की उसकी इच्छा समाप्त हो चुकी थी। नदी के तट पहले की तरह तो नहीं, तल से कुछ फीट ऊपर दिखाई दे रहे थे। प्रलय के उन दिनों में बहकर आई रेत ने तटों को ऊपर उठा दिया था और उन्हीं तटों पर लगे थे फिर वही रंग-बिरंगे टैंट और साथ में थी राफ्ट। सड़क किनारे कुछ गाड़ियाँ भी खड़ी थीं और राफ्टिंग के लिए तैयार कुछ जोशीले नौजवान भी।

विस्मय, प्रसन्नता और उत्साह के मिले-जुले भाव मेरे मन में आए।

''थोड़ी देर रुकें यहाँ पर?''

और हम दोनों गाड़ी से उतरकर नीचे जहाँ टैंट लगे थे, उस ओर चल दिए। मैं ढूँढ़ रहा था एक वर्ष पूर्व मिले उस नौजवान युवक को, जिसका यहाँ राफ्टिंग का व्यवसाय था और जिसके राफ्ट पर मैंने गंगा की लहरों से खेलने का रोमांचक अनुभव लिया था।

''सर, बहुत संभावना है इस साहसिक खेल की यहाँ पर, सरकार थोड़ा सा प्रोत्साहन दे तो यहाँ का युवा पलायन न करे। ये भीड़ देख रहे हैं आप, ऐसा ही सीजन चलता रहे तो अगले वर्ष में कुछ और राफ्ट खरीद लूँगा।'' उसकी आँखों में सैकड़ों जुगनू चमक उठे थे।

केदारनाथ के पास किसी गाँव का रहनेवाला यह युवक कॉलेज की पढ़ाई पूरी करके देहरादून चला आया था। यहाँ नौकरी की तलाश में रहा। पर्यटन की डिग्री ने स्व-व्यवसाय के लिए प्रेरित

किया। पहले किसी के साथ काम किया, अब स्वयं के राफ्ट और राफ्टिंग कैंपिंग साइट्स हैं।

मेरी निगाहें उसी नवयुवक को ढूँढ़ रही थीं। पिछली बार जहाँ पर उसके टैंट लगे थे, वहीं कुछ ढूँढ़ता रहा, लेकिन वह नजर नहीं आया।

''राफ्टिंग के लिए आए हैं सर! हमारी सेवाएँ लीजिए।'' 19-20 वर्ष का युवक मेरे सामने खड़ा था।

मैंने उसकी ओर गौर से देखा, शक्ल जानी-पहचानी सी लगी। कहाँ देखा होगा इसे?

''नहीं, राफ्टिंग नहीं, मैं श्रीकांत'''' हाँ, श्रीकांत यही तो नाम बताया था उसने, ''मैं श्रीकांत को ढूँढ़ रहा हूँ, यहीं पर तो था उसका राफ्टिंग कैंप।''

''आप उसे जानते हैं सर, मैं उनका छोटा भाई रमाकांत।''

''वो कहाँ है आजकल, पिछले वर्ष उसके साथ ही राफ्टिंग की थी मैंने।''

युवक के चेहरे के भाव बदल गए, आँखें पनीली हो आईं, आँसू निकलते न दिखाई पड़ें, इस भय से उसने गरदन झुका ली।

''कुछ पता नहीं सर, वह यहीं था उस रात, यहीं किसी टैंट में शायद, अपनी जीवन भर की पूँजी बहते नहीं देख पाया, बचाने गया था अपने राफ्ट और टैंटों को, लेकिन कुछ न बचा पाया, उसका पता भी नहीं।'' और उसकी आँखों से निकली खारे पानी की दो बूँदें सूखी रेत में समा गईं।

''लेकिन अब तुम'''फिर वहीं काम'''कैसे?'' दो-तीन अधूरे प्रश्न एक साथ पूछ डाले मैंने।

''तो क्या करूँ सर, भाई कहाँ गया, पता नहीं। उसे कुछ हो गया, यह मानने को दिल नहीं करता। माँ है, भाभी है, भाभी का

दुधमुँहा बच्चा है। घर तबाह हो गया, खेत तबाह हो गए। खाने को तो छोड़िए, पीने का पानी तक नहीं था कई दिनों तक। मैं ऋषिकेश में था, घर तक नहीं जा पाया। कई दिन तक किसी की कोई खबर न मिली, किसी तरह गाँव पहुँचा तो पास के एक स्कूल में गाँव के सारे लोग रह रहे थे।'' वह थोड़ी देर साँस लेने को रुका। मैं एकटक उसके चेहरे को निहार रहा था। जिस व्यवसाय ने इसके भाई की जिंदगी ले ली, सबकुछ तबाह हो गया, ये फिर वही···और फिर उसी उत्साह से।

''भाई के साथ यही काम करता था, यही आता है मुझे। सौभाग्य से दो राफ्ट और चार-पाँच टैंट ऋषिकेश में रखे थे, वे बच गए। अब फिर से एक नई शुरुआत की है। सर, बच्चे का सूखा मुँह नहीं देखा जाता, बीस-बाईस वर्ष की भाभी का इस हालत में रहना कलेजा चीर देता है। उस माँ के बारे में सोचिए, जिसे यह नहीं पता कि उसका बेटा जिंदा है या···।'' आगे के शब्द गले में ही घुट गए। थोड़ी देर को चुप रहा, आँसुओं को पीने की कोशिश कर रहा था शायद। हम दोनों भी चुप थे।

''मैं इन सबके लिए काम कर रहा हूँ सर, उन्हें अच्छी जिंदगी देना मेरा कर्तव्य है, और फिर रिस्क कहाँ नहीं है।''

उम्र में कहीं छोटे इस युवक ने मुझे जिंदगी का फलसफा समझा दिया। 'जिंदगी रुकती नहीं' मेरे मुँह से निकला और अनायास ही मेरा हाथ उसके सिर पर चला गया।

□

नोटिस

''पोस्टमैन!''

आवाज सुनकर उसने खिड़की से बाहर झाँका। कंधे में खाकी थैला और सिर पर खाकी टोपी लगाए हुए पोस्टमैन प्राइमरी स्कूल की उसी बिल्डिंग की ओर आ रहा था, जहाँ पर वह परिवार सहित पिछले दो माह से रुका हुआ था।

उसी के पास आकर रुका पोस्टमैन।

''तुम्हारी रजिस्ट्री है।'' रजिस्ट्री रघुवीर के हाथ में रख एक कागज पर हस्ताक्षर करवाकर वह चला गया।

''किसकी रजिस्ट्री होगी?'' सोचा रघुवीर ने। आजकल तो किसी की चिट्ठी की उम्मीद भी नहीं। जब से आपदा आई है, सबको अपनी ही पड़ी है। जिन्होंने खैर-खबर लेनी थी, वे सब इस एक महीने में आकर मिल लिये। कहीं दिल्ली से तो नहीं है तेजा भाई की चिट्ठी? कहकर गया था कि जल्दी ही रहने का बंदोबस्त करने की कोशिश करूँगा। लेकिन वह चिट्ठी क्यों भेजने लगा, उसे तो खुद ही आना था।

सरकारी लिफाफा तो लगता नहीं। जब से एस.डी.एम. गया है गाँव से मौका मुआयना करके, तब से फूटी कौड़ी भी नहीं दी सरकार ने। रेडियो पर सुना था कि बेघर हुए लोगों को सरकार घर बनाने के लिए छह लाख रुपए देगी। तात्कालिक तौर पर तीन हजार रुपए

महीने तब तक दिए जाएँगे, जब तक घर बनता है। हो सकता है, उन्हीं तीन हजार रुपए का चेक हो।

चलो अच्छा हुआ, कुछ नहीं से तो कुछ भला। तब से परिवार पालने के लाले पड़ गए हैं। बच्चे एक-एक दाने को मोहताज हो गए। कुछ तो राहत मिलेगी इससे। चावल-दाल ही सही, कुछ दिन तो पेट भरने को मिलेगा। घर तो बाद में देखा जाएगा, पहले जिंदा तो रहें।

आशा-निराशा के बीच उलझा लिफाफा हाथ में पकड़े रघुवीर उसे अब तक खोल नहीं पाया था। विचारों के द्वंद्व के बीच ही उसने लिफाफा धीरे से ऐसे खोलना चाहा कि कहीं अंदर रखा हुआ चैक खोलते हुए फट न जाए। लिफाफा बुरी तरह चिपका था, सो किनारे से एक बारीक झिर्री से फाड़कर उसने धीरे-धीरे अंदर का कागज बचाते हुए उसे एक कोने से फाड़कर खोल दिया।

तीन-चार तह में लिपटे कागज को बड़ी आशा के साथ खोला, मानो कि उसके अंदर उसके जीवन-यापन की आशाएँ नत्थी करके भेजी गई हों। कागज की तह के अंदर कुछ नहीं था, अलबत्ता उसने कागज की लिखावट को पढ़ना शुरू किया तो हतप्रभ रह गया। एक-एक हर्फ उसके जेहन में उतरता चला गया।

कैसी परीक्षा ले रहा है भगवान् भी! अच्छा-खासा घर-संसार था उसका। आज उसे परिवार के साथ इस तरह से मुफलिसी की जिंदगी जीनी पड़ रही है। ऊपर से यह एक और मुसीबत।

सीतापुर में अच्छा व्यवसाय था रघुवीर का। पिछले पंद्रह वर्षों से अपनी मेहनत के बलबूते धीरे-धीरे उसने अपना रेस्टोरेंट खोल दिया था। बी.ए. की पढ़ाई पूरी करने के बाद उसने निश्चय कर लिया था कि यहीं अपने घर-गाँव में रहकर ही कुछ कारोबार करेगा। उसके अपने भाई तेजा ने तो लाख कहा था कि दिल्ली आ जाए,

उसे कहीं-न-कहीं नौकरी लगा देगा, लेकिन प्रखर बुद्धि के जुनूनी रघुवीर को नौकर बनना पसंद नहीं था। शुरू में उसने सड़क से लगे अपने खेत में लकड़ी का एक खोखा डालकर चाय-पानी, नमकीन के साथ चॉकलेट, बिस्कुट आदि की दुकान शुरू की। दिन भर में यात्रियों की खूब आमद होती थी। केदारनाथ जानेवाले यात्रियों की बस वहाँ पर रुकती तो वे कुछ-न-कुछ खाते-पीते। आमदनी बढ़ रही थी। छह महीने में वह इतना कुछ कमा लेता कि वर्ष भर के लिए बच्चों का गुजारा हो जाता। बाकी के छह महीने कृषि-कार्य में पत्नी का हाथ बँटाता। दोनों बच्चे स्कूल में जाने लगे थे तो जिम्मेदारी भी बढ़ गई। यात्रियों की आमद और आमदनी का अब उसे अंदाजा हो गया था, तो उसने कुछ बड़ा करने की सोची। कुछ पैसा अपने पास जमा था। दस लाख रुपया बैंक से लोन लिया और वहीं उसी खोखे को तोड़कर सुंदर सा रेस्टोरेंट बना लिया। मकान लगाने में ही पूरे दस लाख रुपए लग गए। बाकी की साज-सज्जा, फर्नीचर, बरतन आदि में चार लाख और लग गए।

यात्रा शुरू हुई तो रेस्टोरेंट चल निकला। अपने ही गाँव के चार लड़के कर्मचारी के रूप में उसके साथ काम करने लगे। उसे इस बात से अत्यंत आत्म-संतुष्टि हो रही थी कि अपने परिवार के साथ-साथ उसने चार अन्य युवकों को रोजगार देकर उनके परिवार के भरण-पोषण का भी बीड़ा उठाया है।

रघुवीर ने अपने जीवन में अत्यंत कठिनाइयों और संघर्षों को झेलते हुए यहाँ तक का सफर तय किया था। चार वर्ष का था, तब पिता का साया सिर से उठ गया था। माँ ने किसी तरह से उसे इंटर तक पढ़ाया था। बड़ा भाई तेजू शादी होते ही अपनी पत्नी को अपने साथ दिल्ली ले गया। माँ की अस्वस्थता और उसके सुख की चाह से रघुवीर ने शादी कर ली। सीतापुर के एक बड़े होटल में काम

करते हुए बी.ए. की प्राइवेट परीक्षा भी पास कर ली थी। इससे पहले कि माँ उसके बच्चों का सुख देख पाती, एक दिन पहले वह घर के छज्जे से फिसल गई और हमेशा के लिए उनसे दूर चली गई।

यह पहला यात्रा काल था उसके रेस्टोरेंट का, जिस तरह पहले महीने ही कर्मचारियों की तनख्वाह और बैंक की किस्त देने के बाद उसने अपना बचत का आकलन किया तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। अगर छह महीने तक ऐसे ही चलता रहा तो वह केवल तीन या चार सीजन में ही बैंक का लोन चुकता कर देगा। काश! आज माँ जीवित होती तो कितनी खुश होती। माँ ने भी कम संघर्ष नहीं किया उसके साथ। माँ हमेशा उससे कहती थी कि जैसी खैरी तूने खाई वैसी अपने बच्चों को मत खाने देना।

उसने कक्षा एक से पाँच तक नंगे पाँव एक सुलार कमीज में गाँव की प्राइमरी से पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण की थी, वह भी अव्वल दर्जे में। छठवीं कक्षा में गाँव से चार कि.मी. दूर स्थित हाईस्कूल में एडमिशन लेते दिन उसने पहली बार नई कमीज और नेकर पहनी थी। तेजू भाई ने दिल्ली से किसी के हाथ भेजी थी। कितनी खुशी हुई थी उसे पहली बार, खुशी के उन क्षणों की कल्पना करते हुए मन में आज भी गुदगुदी सी होने लगती है।

इन्हीं सब बातों को स्मरण करते हुए उसने एक-एक क्षण और एक-एक दिन कड़ी मेहनत करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास किया है। अब माँ के सपनों को पूरा करना ही उसका सपना था। उसने तय किया कि वह अपने दोनों बच्चों को गाँव से ले जाकर गुप्तकाशी बाजार के प्राइवेट माउंटेसरी स्कूल में पढ़ाएगा। इसके लिए उसने एक कमरा भी किराए पर ले लिया था।

इनसान जो सोचता है, कभी-कभी वह पूरा जतन करने के पश्चात् भी पूरा नहीं हो पाता। रेस्टोरेंट कर्मचारियों के भरोसे छोड़कर

वह आज पत्नी और बच्चों को लेकर गुप्तकाशी के उस माउंटेशरी स्कूल में सुबह-सुबह उनका एडमिशन फार्म भर रहा था। इस वक्त अनेक सुनहरे सपने उसकी आँखों में तैर रहे थे। तभी उसके मोबाइल पर एक कॉल आई और वह बौखलाया हुआ सा बाहर दौड़ पड़ा।

वह किसी तरह से सीतापुर पहुँचा। उफनाई नदी ने उसके सारे-के-सारे सपनों को चूर-चूर कर दिया। सीतापुर में नदी ने भारी तबाही मचाई थी। उसका रेस्टोरेंट भी पूरी तरह रौखड़ में बदल गया। मुसीबतों का पहाड़ एक साथ ही टूट पड़ा हो जैसे। अतिवृष्टि और भू-स्खलन से गाँव भी पूरी तरह बरबाद हो गया।

पत्नी और बच्चों के साथ पिछले दो महीने से वह गाँव के इस जीर्ण-शीर्ण प्राइमरी स्कूल में शरण लिये हुए था। कुछ भी नहीं बचा। घर-मकान, आँगन, खेत-खलिहान—सब संपत्ति पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी।

हाथ में पकड़े कागज को उसने फिर उसी तरह तीन-चार तहों में लपेटकर उसी लिफाफे के अंदर रख दिया। यह बैंक का नोटिस था, जिसमें लिखा था—यदि आपने दो महीने की किस्त नहीं दी तो आपकी सारी संपत्ति की कुर्की कर दी जाएगी।

वह हँस पड़ा और लिफाफा एक तरफ उछालकर फेंक दिया, ''कर लो कुर्की।''

□

जिंदा हूँ किसी और के लिए

रुपया, पैसा, धन-दौलत, सबकुछ था उनके पास बाबा केदार की कृपा से। कोई भी कमी नहीं थी, फिर भी कोई कमी सी लगती थी जीवन में। क्या कमी रह गई थी, यही सेठ सुखराम की समझ में नहीं आता था। लाख चिंतन-मनन करने के बाद भी कुछ सूझता नहीं था, लेकिन लगता था जैसे कुछ करना भूल गए हों।

महाराष्ट्र में उनका अच्छा-खासा बिजनेस था। वहाँ के उद्योगपतियों में प्रमुखता से नाम लिया जाता था सेठ सुखराम का। दो बेटे और एक बेटी थी, जिनकी समय रहते शादी हो गई थी। बेटी पति के साथ विदेश में खुश थी। एक बेटा कंपनी देखता था और दूसरा फैक्टरी। दो सुशील बहुएँ थीं और नाती-पोते।

भगवान् केदारनाथ पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। सुबह-सायं वे केदारनाथ और बदरीनाथजी का स्मरण जरूर करते। प्रत्येक साल की गरमियों में कपाट खुलने के बाद वे बदरी-केदार के दर्शन के लिए जरूर जाते। बदरी-केदार के साथ ही उन्हें पहाड़ की हरी-भरी वादियों से अत्यंत प्यार था।

उन्होंने पहले-पहले पंद्रह वर्ष पूर्व तब बदरी-केदार की यात्रा की थी, जब अपना व्यवसाय शुरू किया था। बिजली फिटिंग का सामान बनाने का काम छोटे स्तर पर शुरू किया था। धीरे-धीरे काम बढ़ा तो बढ़ता चला गया। स्विच, होल्डर, प्लग और पंखा,

रेगुलेटर बनाने के काम ने मुनाफा दिया तो धीरे-धीरे बिजलीचालित बड़ा सामान बनाना भी शुरू किया। आज पंखा, गीजर, ग्राइंडर, ओवन आदि घरेलू उपकरणों का निर्माण करनेवाली कंपनियों में उनकी कंपनी का नाम प्रमुख ब्रांड बन गया है।

व्यवसाय बढ़ा तो फैक्टरी के साथ-साथ अब कंपनी भी बना दी थी। दोनों स्थानों पर दो सौ से अधिक लोगों को रोजगार भी दे रहे थे।

केवल पंद्रह वर्षों की अल्पावधि में अपने व्यवसाय की प्रगति को वे भगवान् केदारनाथ का प्रसाद ही मानते थे। यही वजह है कि पिछले पंद्रह वर्षों से वे लगातार बदरी-केदार यात्रा पर आते थे, किन्हीं भी परिस्थितियों में उन्होंने अपना यह क्रम टूटने नहीं होने दिया था। पहले वे मुंबई से रेलगाड़ी द्वारा दिल्ली तक आते थे, फिर वहाँ से ट्रैवलिंग एजेंसी से किराए पर कार लेकर यात्रा पर निकलते। पाँच से सात दिन में चारों धामों की यात्रा पूरी कर वे दसवें दिन वापस अपने घर पहुँच जाते और फिर अपने कार्य में व्यस्त हो जाते। देहरादून के जौलीग्रांट में हवाई पट्टी बन जाने के पश्चात् अब वे सीधा मुंबई से देहरादून तक हवाई जहाज से आते और फिर ऋषिकेश से ही टैक्सी बुक करते। यात्रा अब काफी सुगम हो गई थी। केदारनाथ के लिए तो देहरादून, अगस्त्यमुनि और फाटा हेलीपैडों से सीधी हेलीकॉप्टर सेवा भी शुरू हो गई थी।

उस दिन वे हेलीकॉप्टर से ही केदारनाथ पहुँचे थे, दर्शन करने के बाद वे महाराष्ट्र की धर्मशाला में ही रुक गए। इस धर्मशाला में ही पिछले कई वर्षों से वे रुकते आए थे। लौटते हुए वे धर्मशाला संचालित करनेवाले ट्रस्ट को चालीस-पचास हजार रुपए का चैक काटकर दान अवश्य कर जाते थे।

सुबह उन्हें लौटना था, किंतु घाटी में बादल घिरे होने की

वजह से हेलीकॉप्टर सेवाएँ नहीं चलीं, अत: उन्होंने आज भी वहीं रुकने का मन बना लिया। मौसम ने धीरे-धीरे करवट बदली और बूँदाबाँदी से शुरू हुई वर्षा अतिवृष्टि में बदलने लगी। लगातार दो दिनों तक वर्षा थमी नहीं।

रविवार की सुबह थी वह। वर्षा अपने प्रचंड वेग पर थी, किंतु उसकी परवाह किए बगैर वे छाता लेकर भगवान् की अर्चना और जलाभिषेक के लिए धर्मशाला से दो सौ मीटर दूरी पर स्थित मंदिर की ओर निकल गए। चलो, दुबारा भगवान् के दर्शन का पुण्य प्राप्त होगा।

वे मंदिर परिसर में पहुँचे तो अन्य दिनों की अपेक्षा काफी कम श्रद्धालु मंदिर परिसर में मौजूद थे। शायद लगातार हो रही बारिश के चलते लोग होटलों, लॉज और धर्मशालाओं से बाहर नहीं निकले थे। वे कतार में भी लग गए। चलो, आज पूरी तसल्ली से पूजा हो पाएगी। ऐसे अवसर कम ही उपलब्ध हो पाते हैं। आँखें बंद कर वे शिव चालीसा का जाप करने लगे।

तभी कोई भीषण विस्फोट जैसी आवाज हुई, लगा जैसे कोई तोप का गोला फट गया हो। पूरे मंदिर परिसर में एक कंपन जैसा उत्पन्न हुआ। ऊपर पहाड़ी की ओर नजर गई तो होश उड़ गए। मंदाकिनी नदी में पानी का भारी सैलाब तेजी से मंदिर की ओर भारी गर्जन के साथ बढ़ता आ रहा था। भगदड़ मच गई पूरे परिसर में, किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था।

वे अब तक मंदिर के मुख्य दरवाजे के निकट तक पहुँच चुके थे। कुछ भी समझ में नहीं आया तो मंदिर के अंदर ही घुस गए। उनके साथ ही वहाँ मौजूद अन्य लोग भी गर्भगृह तक घुस आए। सौ-डेढ़ सौ लोग जमा हो गए थे वहाँ। कोई न तो कुछ कह पा रहा था और न कुछ समझ पा रहा था। पानी का सैलाब भारी

गर्जना के साथ मंदिर के दोनों ओर से होता हुआ, पूरे बाजार को सपाट करता आगे बढ़ गया। मंदिर के अंदर भी पानी और मलबा घुस आया। पानी गले-गले तक आ गया तो उनका दम घुटने लगा था। लगा कि अब वे पानी में ही डूब जाएँगे। गर्भगृह की छत से मोटी लोहे की जंजीर से बँधे घंटे को जोर से पकड़ लिया। न जाने कितने घंटों वे इसी तरह झूलते रहे, उन्हें भी मालूम नहीं। पानी धीरे-धीरे कम होता चला गया, तो दिन ढलने लगा था। गर्भगृह के अंदर कीचड़ और मलबे में फँसे कई लोग लाशों में तब्दील हो चुके थे। वहाँ जमा बाकी के सारे लोग सकते में थे, मानो सब काठ के हो गए हों। बाहर निकलने की किसी की भी हिम्मत नहीं हो रही थी। मंदिर के दोनों ओर से बाढ़ के तीव्र प्रवाह के साथ बहते शिलाखंडों के आपस में टकराने की आवाजें अभी भी यह अहसास दिला रही थीं कि संकट अभी भी टला नहीं है। अँधेरा घिर आया और फिर रात भी गहरा गई। वहाँ जीवित सभी लोग बिना किसी से एक शब्द बोले लाशों के मध्य ही चुपचाप रात बीतने का इंतजार करते रहे।

सेठ सुखराम भी चुपचाप बैठे रहे। इस समय वे सेठ नहीं, पीड़ित एक आम आदमी की तरह अपनी जान बचाने की चिंता कर रहे थे। अमीर-गरीब, रुपए-पैसे और छोटे-बड़े की सारी दीवारें नदी का वेग बहा ले गया था। रात्रि के गहन अंधकार में चारों तरफ बाढ़ के रूप में बह रहे पानी के सैलाब की भयंकर आवाजें बड़ी खौफनाक प्रतीत हो रही थीं। सेठ सुखराम को लगा, जैसे वे किसी दूसरे लोक में पहुँच गए हैं, एक स्वप्न की तरह से महसूस हो रहा था सबकुछ।

कहीं सचमुच में वे किसी दूसरे लोक में तो नहीं पहुँच गए? कहीं यह मृत्यु के उपरांत का लोक तो नहीं? तो क्या वे मर गए हैं

अन्य लोगों की तरह। बात दिमाग तक उतरती चली गई और धारणा पक्की होती चली गई। उन्हें लगा—उनकी देह जमीन पर मृत पड़ी है। यह जो कुछ महसूस हो रहा है, वह उनकी सूक्ष्म आत्मा का चिंतन है।

हाँ, शास्त्रों में यही तो कहा गया है—आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहती है, तो क्या अब मैं आत्मा मात्र हूँ? विचार उलझते चले गए। मृत्यु के बाद देह चेतना और संवेदना की सीमाओं से दूर हो जाती है मिट्टी के समान। नहीं-नहीं, मिट्टी में तो जीवन होता है। पत्थर के समान हो जाती है देह। शायद उनकी देह भी पत्थर के समान हो गई है। मैं जिंदा हूँ या मुरदा? यह जाँचने के लिए उन्होंने अपने पैर की पिंडली पर जोर की चिकोटी काटी। पानी में सुन्न हो चुके बदन में पीड़ा की लहर दौड़ गई।

''मैं जीवित हूँ...मैं जीवित हूँ।'' वे खुद ही बड़बड़ा उठे अपने आप में।

''हाँ, आप जीवित हैं। भगवान् ने आपको जीवित रखा है।'' बगल में बैठे व्यक्ति ने धीरे से बोलते हुए उनकी बात की पुष्टि कर दी। अब थोड़ा सांत्वना हो आई सेठ के दिल में। जीवन और मौत के मध्य कुछ फर्क है, यह मालूम हो गया था उन्हें।

सुबह हुई, वे बाहर निकले तो सारा परिसर लाशों से अँटा पड़ा था। चारों तरफ चीत्कार और हाहाकार मचा था। कुछ समझ नहीं आया तो महाराष्ट्र धर्मशाला की ओर चल पड़े। लेकिन यह क्या? धर्मशाला का तो कहीं नामोनिशान ही नहीं। वहाँ तो नदी बह रही थी, किसी रौखड़ के रूप में। वे खुद को सँभाल नहीं पाए, मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

होश आया तो अपने आपको देहरादून के किसी नर्सिंग होम में पाया। दोनों बेटे और बहुएँ सामने थे। उनको होश आया देखकर

सबकी आँखें छलछला आईं।

''पिताजी, भगवान् का लाख-लाख शुक्र है कि आप कुशल हैं। मैं हेलीकॉप्टर बुक करके लाया हूँ। चलो, मुंबई में ही आपका इलाज कराएँगे।'' बड़ा बेटा भावुक होकर बोला।

''नहीं रे! मुझे अब कहीं नहीं जाना। यहीं पीड़ितों और दीन-दुखियों की सेवा में जीवन गुजारना है, शायद इसीलिए भगवान् ने जीवित रखा है।'' और उनके होंठों पर एक मुसकराहट फैल गई।

☐

पीड़ा से भी ऊपर

ऊखीमठ के उस राहत शिविर में जब मैं पहुँचा तो लोग चीखने-चिल्लाने लगे। मुझे नहीं मालूम कि लोग क्या कह रहे हैं। शोर-शराबा इतना ज्यादा कि कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। एक-दूसरे की सुनने को कोई तैयार न था।

लोगों के मनोभावों और उनकी मुखमुद्रा को देखकर मैं इतना तो समझ ही गया था कि वे भारी आक्रोश में थे। शायद दस दिन बीत जाने के बाद भी राहत का कोई इंतजाम न होने के कारण सरकार के प्रति नाराजगी व्यक्त कर रहे थे।

ज्यादातर लोगों को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। कुछ को नाम से, तो कुछ को शक्ल से। दो-तीन वर्ष मुझे ऊखीमठ में रहने का अवसर मिला था। तब अध्यापन कार्य के साथ-साथ अभिभावक संपर्क के अपने अभियान के चलते मैंने इस क्षेत्र के प्रत्येक गाँव और प्रत्येक घर का भ्रमण किया था।

लोग मुझे पहचानते थे। मैं इस आपदा में उनका दुःख-दर्द बाँटने उनके बीच आया था। शायद इसी अपनत्व के कारण वे मुझसे अपनी पीड़ा पर हावी हो चुके आक्रोश को व्यक्त कर रहे थे।

यहाँ सभी तरह के लोग थे, अलग-अलग गाँवों के। किसी का गाँव खतरे की चपेट में है तो किसी का घर बह गया था, किसी का सामान नष्ट हो गया था तो किसी का व्यवसाय उजड़ गया था। मुझे

समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर ये लोग कह क्या रहे हैं। एक व्यक्ति बोल रहा होता तो कुछ समझ में आता और इस समस्या का समाधान निकालने का प्रयास किया जाता, लेकिन यहाँ तो केवल कोलाहल ही सुनाई दे रहा था, बाकी कुछ नहीं।

स्त्री-पुरुष सभी अपनी-अपनी बात ऊँचे स्वरों में बोले जा रहे थे। एक सरकारी भवन का हॉलनुमा कमरा था यह। जिसमें भेड़-बकरियों की तरह सत्तर-पचहत्तर लोग ठुसे हुए थे। चारों ओर एक निगाह डालकर मैंने सब चेहरों को देख लिया था, लेकिन मेरी नजर हॉल के एक कोने में घुटनों में मुँह छिपाए, शांत और सिमटी सी बैठी उस महिला पर आकर टिक गई।

सभी लोग कुछ-न-कुछ बोल रहे हैं, किंतु यह क्यों चुप बैठी है? मेरे मन में जिज्ञासा पैदा हुई, क्या इसकी कोई पीड़ा नहीं होगी? आपदा पीड़ित तो यह भी होगी जरूर, वरना इस शिविर में क्यों पड़ी रहती? हो सकता है, इसका दुःख अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ कम होगा। नहीं-नहीं, इसकी पीड़ा कम तो नहीं होगी, उसके मौन और शिथिल मुद्रा से तो यह लगता है कि शायद इसके अंतर में पीड़ा का अथाह सागर है।

जब जख्म छोटा होता है तो उसकी पीड़ा काफी तीखी लगती है। मनुष्य बिलबिला उठता है ऐसी पीड़ा से, किंतु जब जख्म गहरा होता है तो उसकी अथाह पीड़ा मन-मस्तिष्क को चेतना-शून्य कर देती है। तब व्यक्ति की मुद्रा यही होती है, स्थिर और शिथिल। न जुबान पर शब्द और न आँखों में आँसू।

न जाने क्यों बार-बार उस पर मेरी निगह टिक जाती। उसके बारे में जानने के लिए मन में जिज्ञासा बलवती हो उठी थी। सब लोग बोले जा रहे थे तो उनकी पीड़ा का अनुभव भी मुझे उनके शब्दों और मुद्राओं से हो चुका था, लेकिन इस महिला के साथ

क्या हुआ होगा, यह जानने को मैं उत्सुक था।

सभी लोग धीरे-धीरे शांत होते चले गए। अब इक्का-दुक्का लोग ही बोले जा रहे थे, तो मुझे उनका दुःख-दर्द और समस्या अब समझ में आ रही थी।

लोगों के घर बह गए हैं, उनके पास अपना कुछ नहीं बचा, सिर छुपाने की जगह नहीं है। राशन नहीं मिल रहा है, बच्चे भूखे पेट बिलबिला रहे हैं। इस शिविर में ऐसे कब तक शरणार्थियों की तरह दिन काटते रहेंगे? सरकार रहने-खाने की तत्काल व्यवस्था क्यों नहीं करती? यही सब बातें निकलकर आ रही थीं।

यह सब तो मैं तब ही समझ गया था, जब इस शिविर के दरवाजे के अंदर कदम रखा था। यदि इन्हें तत्काल राहत मिल गई होती तो अब तक बाल-बच्चों सहित क्यों इस सरकारी मकान के एक कमरे में इस तरह पड़े रहते।

पहाड़ी लोग यों भी खुले में रहने-खाने के आदी होते हैं। यहाँ गरीब से गरीब व्यक्ति के पास भी अपना पक्का मकान है। वह दो जून की रोटी बहुत अच्छे ढंग से खाता है। ईश्वर और मनुष्यता में आस्था रखनेवाले यहाँ के लोग परिश्रमी और पुरुषार्थी हैं। हाँ, यह अलग बात है कि संपत्ति और आय के अनुसार यहाँ अलग-अलग वर्ग हैं। प्राकृतिक आपदा किसी के साथ भी भेदभाव नहीं करती, यह सबके लिए आती है। किसी का नुकसान अधिक होता है तो किसी का कम।

उस महिला के साथ न जाने क्या हुआ होगा, मेरा ध्यान बार-बार उधर चला जाता। सबकी बातें सुनने के बाद मैंने उनकी समस्याओं के निराकरण के लिए पहले डी.एम. और फिर सी.एम. से बात करने का आश्वासन दिया और उन्हें धैर्य बँधाया। जाने को हुआ तो मेरा पुराना मित्र बृजेश मुझे बाहर तक छोड़ने आया। मैं

कुछ पूछता, उससे पहले वह खुद ही बोल पड़ा, ''भाई साहब! उस बेचारी को तो तुरंत राहत पहुँचाओ, सबकुछ लुट गया उसका।''

''कौन? किसका?'' मैंने पूछा

''अरे, देखा नहीं, एक कोने पर जो चुप बैठी थी।'' बृजेश बोला, ''उसे कहीं अस्पताल में भरती करवाओ। तब से एक दाना भी अन्न का नहीं खाया उसने। ऐसे तो मर जाएगी बेचारी।''

''क्या हुआ उसके साथ?'' मेरी जिज्ञासा और भी बढ़ गई थी।

बृजेश ने बताना शुरू किया, ''सुशीला नाम है उसका, क्वारी गाँव की रहनेवाली है, भरा-पूरा संपन्न परिवार था उसका। उसके पति पंडित त्रिवेदीजी का केदारनाथ में काफी बड़ा लॉज था। दो बेटे थे। एक ने अभी-अभी बारहवीं पास किया था, जबकि दूसरा इंजीनियरिंग में निकला था। पंडितजी ने कुछ दिन पहले ही पत्नी और दोनों बच्चों को देहरादून में रखने के लिए कमरा किराए पर लेकर सब सामान रखवा दिया था। दोनों बच्चों और उनकी माँ को सोमवार को देहरादून जाना था। शनिवार को दोनों भाई पिता से मिलने केदारनाथ चले गए। रविवार को माँ उनकी वापसी की प्रतीक्षा करती रही, लेकिन वे दोनों भाई पिता सहित लॉज में ही¨।''

बृजेश आगे बोला, ''यही दुःख सुशीला के लिए कुछ कम नहीं था, लेकिन भगवान् ने तो उसको कहीं का नहीं छोड़ा। सोमवार को गाँव के ऊपर हुए भू-स्खलन में पूरा मकान भी ढह गया। किसी तरह से लोगों ने उसकी जान बचाकर यहाँ तक पहुँचाया।''

सुनकर मेरी आँखें भर आईं। कितनी पीड़ा होगी उसके हृदय में, मैं समझ सकता हूँ। उसकी पीड़ा का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वह अपनी पीड़ा को व्यक्त नहीं कर पा

रही थी। एक शब्द भी मुँह से बाहर नहीं निकाला था उसने।

मैं रात्रि विश्राम हेतु अपने कमरे में आ गया था, किंतु नींद मेरी आँखों से कोसों मील दूर थी। मैंने निश्चय किया कि प्रातः सबसे पहले उसे अस्पताल में भरती कराऊँगा। उसका जीवन बचाने के लिए यह बेहद जरूरी था।

□

अनजान

देहरादून के सरकारी अस्पताल का प्राइवेट वार्ड नंबर आठ। रात्रि के सघन अंधकार को चीरती हुई चीख ने सारे अस्पताल को हिलाकर रख दिया, ''मम्मी...ई...ई...ई...ई, पा...पा...आ...आ...आ...।''

वार्ड के बाहर कुरसी पर ऊँघ रहा वार्ड अटैंडेंट हड़बड़ाकर मरीज के पास पहुँच गया। दौड़ती हुई स्टाफ नर्स और पीछे-पीछे डॉक्टर भी।

''क्या हुआ? सो जाओ, रात हो रही है।'' स्टाफ नर्स ने प्यार से उसके गालों पर थपकी देते हुए कहा।

''नहीं-नहीं, मुझे जाने दो...जाने दो मुझे...मेरे मम्मी-पापा बह रहे हैं, डूब रहे हैं।'' वह हाथ झटकते हुए उठने की कोशिश करने लगी, लेकिन वार्ड अटैंडेंट ने मजबूती से उसके हाथों को जकड़ दिया था।

''सिस्टर, एक इंजेक्शन दे दो, कुछ रिलेक्स हो जाएगी।'' कहकर डॉक्टर चला गया।

''नहीं-नहीं, मुझे जाने दो। मेरे मम्मी-पापा...मैं उन्हें बचा लूँगी, प्लीज, मुझे जाने दो।'' वह उठने की पूरी कोशिश कर रही थी, लेकिन अटैंडेंट ने उसे उठने नहीं दिया, उसके दोनों हाथों को मजबूती से बिस्तर पर दबाए रखा। स्टाफ नर्स ने इंजेक्शन तैयार कर उसकी बाँह में ठोक दिया। धीरे-धीरे उसका बदन शिथिल पड़ने लगा।

‘‘मे···रे···म···म्मी··, पा···पा···।’’

अब उसकी तीखी और चीख भरी आवाज बड़बड़ाहट में बदल गई थी।

पिछले पाँच दिनों से भरती थी वह इस अस्पताल में। कौन है, किसी को भी नहीं मालूम। सेना का हेलीकॉप्टर उसे केदारनाथ से देहरादून लेकर आया था। वह विक्षिप्त सी अवस्था में वहाँ भी इधर से उधर चीखती-चिल्लाती हुई दौड़ रही थी। सेना के जवानों ने किसी तरह से काबू करके उसे देहरादून हेलीपैड पर पहुँचाया था। वहाँ से पुलिस और प्रशासन के लोगों ने एंबुलेंस द्वारा उसे अस्पताल में पहुँचाया और भरती करवा दिया।

डॉक्टर उसे ठीक करने के लिए जी-जान से जुटे हुए थे। प्रशासन की तरफ से बारी-बारी से एक अटैंडेंट चौबीसों घंटे उसकी देखरेख के लिए वार्ड के बाहर तैनात किया गया था।

वह होश में आती तो चीखने-चिल्लाने लगती, आपदा का खौफ इस कदर उसके दिलो-दिमाग पर हावी हो गया था कि वह अपने बारे में तो दूर, अपना नाम तक नहीं बता पा रही थी। वह कौन है, कहाँ की है, वह किसके साथ यात्रा पर आई है, उसके साथ क्या घटा? किसी को नहीं मालूम। वह खुद कुछ भी बताने की स्थिति में नहीं थी, लेकिन उसके व्यवहार और बातों से इतना तो अंदाजा लगाया जा सकता था कि वह किसी अच्छे परिवार की पढ़ी-लिखी युवती है, जो अपने मम्मी-पापा के साथ केदारनाथ की यात्रा पर आई थी। जल-प्रलय में शायद उसके मम्मी-पापा बह गए। उसके कोमल दिल और दिमाग पर इसी का सदमा लगा है।

पंद्रह-सोलह वर्षीय इस युवती का चेहरा-मोहरा और भाषा से अंदाजा लगाया जा सकता था कि वह पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी जिले के उच्च घराने से संबंधित होगी। उसकी बोली-भाषा में

अंग्रेजी के शब्द भी होते, जब वह ज्यादा व्यथित और उग्र होती तो अंग्रेजी भाषा में भी चीखने-चिल्लाने लगती।

सदमा इतना बड़ा था कि पाँच दिन में भी डॉक्टर उसको दस प्रतिशत भी सामान्य करने में सफल नहीं हो पाए थे।

वह अर्धविक्षिप्त जैसी हो गई थी। मूड डिसऑर्डर कंट्रोल के लिए उसे बराबर दवाइयाँ और इंजेक्शन दिए जा रहे थे। डॉक्टरों को विश्वास था कि वह जल्दी ही सामान्य हो जाएगी और अपना नाम-पता बता पाएगी; लेकिन पाँच दिन गुजरने के उपरांत भी वह सिर्फ चीखने-चिल्लाने के अलावा कुछ भी नहीं बता पाई थी। अस्पताल के भरती रजिस्टर में भी उसका नाम कुमारी अनजान लिखा हुआ था।

वह जब-जब होश में आती तो एक ही रट लगाए रहती। उसको ढूँढ़ने अपना-पराया कोई भी नहीं आया था। पुलिस द्वारा उसके फोटो अखबारों, टेलीविजन और राहत शिविरों के साथ-साथ हेलीपैडों और बस-अड्डों पर भी चस्पाँ कर दिए गए थे। हो सकता है, उसके अपने उसे ढूँढ़ रहे हों, लेकिन उसका कोई रिश्तेदार या सगा अब तक हॉस्पिटल में नहीं आया था।

वह तीन-चार घंटे बाद होश में आती तो डॉक्टर एवं नर्सें उसे मानसिक रूप से सांत्वना देने की कोशिश करते, लेकिन उनका प्रयास सफल नहीं हो पाता। दरअसल इस समय उसे सहानुभूति एवं प्यार की सबसे अधिक जरूरत थी, जो उसे कोई अपना ही दे सकता था। इस सदमे से उभरने के लिए यही एकमात्र कारगर इलाज भी था।

अस्पताल में उसे देखने एवं पहचानने आनेवालों का भी ताँता लगा था, इस कारण भी वह ज्यादा उद्वेलित हो उठती।

जल त्रासदी का भयंकर मंजर और माँ-बाप के बिछुड़ने

अथवा डूबने का वह दृश्य एक फिल्म की भाँति जैसे उसके मन-मस्तिष्क में छप चुका था। त्रासदी के आठ दिन बीत जाने के बावजूद वह उसी जगह जी रही थी और उस घटनाक्रम से बाहर नहीं निकल पा रही थी।

अर्धचेतन अवस्था में भी वह बड़बड़ाती रहती–

''मम्मी, बाहर मत निकलो; बहुत तेज बारिश हो रही है। पापा, मम्मी को मत जाने दो…'' आदि-आदि।

न जाने वह कौन होगी, क्या वह इस हादसे से उबर पाएगी, क्या उसे उसके अपने मिल पाएँगे, उसके भविष्य का क्या होगा? बहुत सारे सवाल हैं, जो वार्ड नंबर आठ में अर्धचेतनावस्था में भरती इस युवती के भविष्य के गर्भ में ही छिपे हैं।

□

इक रिश्ता दिल का

देहरादून के एक बड़े अस्पताल के वार्ड नंबर चार में मरीज के बैड के पास लगे लंबे से स्टूल पर अकेले बैठे वृद्ध के मन में भारी उथल-पुथल मच रही है। पाँच दिन से वह इसी अस्पताल के इसी वार्ड में भरती एक अजनबी युवक के होश में आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज पाँच दिन बीत जाने के बाद भी वह युवक होश में नहीं आ पाया है।

डॉक्टर उसको होश में लाने का पूरा प्रयास कर रहे थे। वे खुद भी बराबर उसकी देखभाल में जुटे थे। डॉक्टरों ने बताया कि सिर में गंभीर चोट आ जाने के पश्चात् युवक कोमा में चला गया है। उसके ठीक होने की पूरी तो नहीं, किंतु पचास प्रतिशत उम्मीद डॉक्टरों ने बताई थी। इसी पचास प्रतिशत उम्मीद के सहारे वे अभी तक उसके जीवन के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे और अस्पताल तथा सभी प्रकार की दवाइयों इत्यादि का खर्चा वहन कर रहे थे। दिन बीतने के साथ-साथ आखिर उनका धैर्य भी जवाब देने लगा था।

‘‘क्या करें, क्या न करें, इसी उधेड़बुन में वे विचलित हुए जा रहे थे। क्या उसे छोड़कर चला जाऊँ? उसकी किस्मत है, जो होगा होने दो, मुझे क्या लेना-देना, आखिर वह मेरा लगता क्या है, जो उसके पीछे यों लगा रहूँ? न नाम मालूम, न पता, न मैं उसे

जानता हूँ, न वह मुझे। फिर क्यों उसके पीछे मैं अपना समय बरबाद कर रहा हूँ।

'नहीं नहीं', दिल से आवाज आती, 'ऐसे कैसे छोड़कर जा सकता हूँ मैं इसे। मैंने ही इसे यहाँ इस अवस्था में भरती कराया है। अभी यह बेहोश है, होश में होता तो भी कोई बात नहीं थी, न जाने इसके अपने कहाँ होंगे। उन्हें भी इसकी इस हालत की जानकारी होगी या नहीं। जानकारी होती तो अब तक यहाँ आ गए होते।'

सोचते-सोचते बुजुर्ग वंशीलाल की आँखों में दस दिन पहले की वह बीभत्स घटना ताजा हो आई, जिसमें उन्होंने अपना सबकुछ गवाँ दिया था।

विश्वप्रसिद्ध धाम केदारनाथ की यात्रा के लिए आए थे सपरिवार। साथ में पत्नी सावित्री, बेटा विजय, बहू शालिनी, पोता राघव और पोती रागिनी। सब लोग अपनी गाड़ी में दिल्ली से सवार होकर गौरीकुंड तक पहुँच गए थे। यहाँ पहुँचते हुए साँझ हो गई थी। गौरीकुंड सड़क मार्ग का अंतिम पड़ाव था।

गौरीकुंड से केदारनाथ के लिए पैदल रास्ता है, जिसकी दूरी चौदह कि.मी. है। उन्होंने वहाँ विश्राम हेतु नदी किनारे एक भव्य होटल में दो कमरे बुक कर दिए। खाना इत्यादि खाकर सब लोग सो गए, क्योंकि कल सुबह उन्हें अपनी पैदल यात्रा प्रारंभ करनी थी। सुबह हुई तो सब जल्दी-जल्दी तैयार हो गए। कमरों से बाहर निकले तो प्रकृति की अद्‌भुत छटा देखते ही सबके मन खिल उठे। कलकल करती नदी की स्वच्छ धवल पतली सी धारा, दोनों किनारे हरे-भरे वृक्षों और लताओं की कतारें अत्यंत रमणीक लग रही थीं। दोनों बच्चे तो अत्यंत उत्साहित हो रहे थे। सास और बहू तो नदी की धारा तक भी घूमने चली गई थीं, जबकि विजय और वे स्वयं लॉन में घूमते हुए प्रकृति के इन अनोखे नजारों की ही बातें करते

रहे। शायद यह पहला मौका रहा होगा, जब दोनों पिता-पुत्र में एक साथ बैठकर व्यापार और परिवार के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बातचीत हुई होगी।

तभी अचानक जोर की आवाज ऊपर से नीचे की ओर आती सी प्रतीत हुई। इसी के साथ अचानक मानव कोलाहल भी बढ़ गया। क्या हुआ, कुछ पता नहीं चल रहा था, लोग चिल्ला रहे थे और इधर-उधर दौड़-भाग रहे थे। वंशीलाल और विजय कुछ समझ पाते, इससे पूर्व ही उनकी नजर ऊपर से नदी के साथ भयंकर गर्जन-तर्जन करते तेजी से नीचे की ओर बढ़ते सैलाब पर पड़ी। पूरा जलजला आ गया हो जैसे। विजय बिना कुछ सोचे-समझे माँ और पत्नी को बचाने नदी की ओर भागा, जबकि वंशीलाल लॉन में कुछ दूरी पर खेल रहे बच्चों की ओर लपके। किसी को भी समय नहीं मिला। माँ और पत्नी को बचाने की कोशिश में विजय भी उन्हीं के साथ जलसैलाब में डूबता-उतरता क्षण भर में नजरों से ओझल हो गया।

दोनों बच्चों को अगल-बगल थामे वंशीलाल जैसे ही ऊपर की ओर दौड़े तो बड़ी-बड़ी चट्टानें और पत्थरों के साथ तीव्र जल-प्रवाह की चपेट में आ गए। दोनों बच्चे हाथ से छूट गए। वंशीलाल ने बच्चों को बचाने की भरपूर कोशिश की, लेकिन असफल रहे और अपनी ही आँखों के सामने अपने पूरे परिवार को काल के ग्रास में समाते देखते हुए दूर तक बहते चले गए। वंशीलाल ने देखा कि उन्हें बचाने के लिए दूर से दौड़ता हुआ एक युवक पानी में कूद गया। वंशीलाल का हाथ थामकर किसी तरह से उन्हें किनारे लाकर ऊपर की ओर धकेला और खुद जमीन की सतह पर आने का प्रयास कर रहा था कि तभी उफनाए पानी के साथ बहती पत्थर की एक बड़ी शिला आकर उसके सिर से टकरा

गई। वंशीलाल ने उसका हाथ नहीं छोड़ा और किसी तरह से उसे ऊपर खींच लिया। युवक बेहोश हो गया था। पूरी शक्ति लगाकर वंशीलाल उसे कुछ और ऊपर सुरक्षित स्थान पर ले आए।

प्रलय का रौद्र रूप कुछ थमा तो सबकुछ नष्ट हो चुका था। जहाँ कल वंशीलाल परिवार के साथ रुके थे, वहाँ अब पूरा-का-पूरा बाजार मरघट में बदल चुका था। पत्थर, मलबे और झाड़ियों के मध्य सिर्फ इनसानी लाशें नजर आ रही थीं, जो लोग किसी तरह बच गए थे, वे चीख-चिल्ला रहे थे। किंकर्तव्यविमूढ़ से वंशीलाल कुछ भी सोचने-करने की स्थिति में नहीं थे। उनका पूरा परिवार नदी के इस प्रंचड सैलाब में बह चुका था। जिनके जीवित रहने की अब कोई उम्मीदें नहीं थीं। यह युवक उनके सामने बेहोश पड़ा था, जिसने अपनी जान जोखिम में डालकर उन्हें बचाया था। सब अपनी जान की फिक्र में इधर-उधर सुरक्षित ठिकाना ढूँढ़ रहे थे, हाहाकार और क्रंदन के बीच कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। वंशीलाल खुद बुरी तरह घायल थे।

एक दिन के पश्चात् आसमान में हेलीकॉप्टरों की गड़गड़ाहट सुनाई दी। घायलों को लेकर सेना के जवान अस्पताल में पहुँचाने लगे। वंशीलाल को भी बेहोश युवक के साथ ही रुद्रप्रयाग के अस्पताल में भरती करवा दिया गया। प्राथमिक उपचार के पश्चात् वंशीलाल की हालत कुछ चलने-फिरने लायक तो हो गई, किंतु युवक को होश नहीं आया था। उसे छोड़कर जाने को वंशीलाल का मन नहीं हुआ। डॉक्टरों ने उसे देहरादून के लिए रैफर कर दिया। असमंजस में फँसे वंशीलाल उसे टैक्सी के माध्यम से देहरादून ले आए।

''क्या नाम है आपके बेटे का?'' पूछा था डॉक्टर ने।

'नाम?' सकपका गए थे वंशीलाल, उन्हें तो इसके बारे में कुछ भी नहीं मालूम।

''नाम बताओ पेसेंट का।'' अबकी बार नर्स ने पूछा, कुछ ऊँची आवाज में।

''वि'''वि'''विजय!'' कुछ न समझते हुए वंशीलाल ने अपने ही बेटे का नाम बता दिया था।

सात दिन से वंशीलाल अस्पताल में ही पड़े हुए थे इस युवक के लिए। सारा सामान जल-प्रलय की भेंट चढ़ गया था। मात्र बदन पर जो कपड़े थे, वही शेष थे और जेब में जितने पैसे थे, वे भी लगातार कम होते जा रहे थे।

''न जाने इसे होश आता भी है या नहीं? आता है तो न जाने कब तक? इसे छोड़कर जा भी तो नहीं सकता, आखिर इसी की बदौलत तो मैं आज जिंदा हूँ।'' तरह-तरह के विचार वंशीलाल के मन में आ-जा रहे थे। इतने दिन इस युवक के निकट रहने के बाद वंशीलाल को इससे एक अजीब तरह का मोह भी हो गया था। अकेले बैठे वंशीलाल घंटों तक उसका चेहरा देखते रहते और उसको पढ़ने की कोशिश करते। यह अब नित्य का क्रम हो गया था।

'मुझे इससे यह कैसी हमदर्दी हो गई है!' उसका चेहरा देखते हुए अपना सबकुछ खो चुके वंशीलाल सोचने लगे। युवक की आँखें खुलीं। एकटक जैसे शून्य को निहार रही थीं।

तभी जैसे वंशीलाल को भ्रम सा हुआ, उन्हें लगा, जैसे युवक ने पलकें झपकी हैं। वंशीलाल ने आँखें मलीं, फिर उसके चेहरे की ओर देखा तो चौंक उठे। अबकी बार उसकी पलकें फिर झपकीं, खुशी से उछल पड़े वंशीलाल—''सिस्टर'''सिस्टर! वार्ड नंबर चार को होश आ गया।'' दौड़कर बताया नर्स को।

''वार्ड को या मरीज को?'' मुसकराई थी सिस्टर।

''म'''म'''मेरा मतलब है मरीज को।''

डॉक्टर भी आ गया। पलकों पर पानी के छींटे मारे, फिर बाँह

पर एक चिकोटी काट दी।

''आह!'' पहली बार उसके मुँह से शब्द सुनकर वंशीलाल की आँखें भर आईं।

''गुड! काफी प्रोगेस है। अब यह जल्दी ही ठीक हो जाएगा।'' डॉक्टर ने बताया।

और उसी शाम को वह उठ बैठा।

''मैं कहाँ हूँ?'' उसने चारों ओर निगाह दौड़ाकर पूछा।

''तुम अस्पताल में हो, देहरादून में। जरा याद करो, मुझे नदी से निकालते समय तुम बेहोश हो गए थे।'' वंशीलाल ने उसे उत्साहित करते हुए याद दिलाया। पर एकदम चुप्पी। जैसे कुछ याद करने की कोशिश कर रहा था वह। वंशीलाल ध्यान से उसकी प्रतिक्रिया देख रहे थे। यकायक वह फफककर रोने लगा।

''मुझे क्यों बचाया आपने, मैं बरबाद हो गया। मेरी माँ, मेरी पत्नी, बच्चे, घर-परिवार सब बह गए। मैं बरबाद हो गया, मैं मर जाना चाहता हूँ।''

''ओह!'' मन आहत हो उठा वंशीलाल का। इसका मतलब इसके साथ भी मेरी ही तरह घटना घटित हुई है, फिर से उस घटना के जख्म ताजा हो गए उनके दिल में।

''धैर्य रखो! ईश्वर ने तुम्हें और तुमने मुझे यह जीवनदान दिया है तो इसमें भी कुछ अच्छाई ही होगी।''

वंशीलाल ने उसे रोने दिया। युवक का रोना अब सिसकियों में बदल गया था। कुछ देर बाद वह चुप हो गया।

''क्या नाम है तुम्हारा?''

''रघुवीर।''

''क्या करते हो?''

''घोड़ा चलाता था गौरीकुंड से केदारनाथ, सुबह केदारनाथ

से घर लौटा तो देखा कि सारा गाँव मरघट में बदल गया। कुछ नहीं बचा, परिवार के साथ-साथ घर, सामान, खेती सबकुछ।'' वह पुनः सुबकने लगा।

''मेरा भी पूरा परिवार बह गया। यात्रा पर आया था, कुछ नहीं बचा।''

वंशीलालजी ने अपने बारे में बतलाया।

और फिर जब तक रघुवीर पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो गया, वंशीलाल वहीं जमे रहे। इस बीच उत्तराखंड में स्थितियाँ सामान्य होने लगीं। सरकार ने इस आपदा से हताहत, घायल और बेघर हुए लोगों के बारे में सूचना जुटानी शुरू की। अब वंशीलालजी को अपने घर और व्यवसाय की भी चिंता सताने लगी, लेकिन उन्हें यह भी आश्चर्य हुआ कि एक माह से भी अधिक समय बीत जाने के पश्चात् उनके परिजनों ने उनकी तथा उनके परिवार की सुध नहीं ली। अगर सुध ली होती तो जिस तरह से अन्य लोग अपने परिजनों को ढूँढ़ते हुए पुलिस स्टेशनों, राहत कैंपों और अस्पताल की खाक छान रहे थे, तो वे अब तक वंशीलाल को ढूँढ़ चुके होते। अपने परिवार के अतिरिक्त उनके दो भाई और दो बहनें हैं, जो दिल्ली में रह रहे हैं।

''अब आप पूरी तरह से स्वस्थ हैं और अपने घर जा सकते हैं।'' सुबह नर्स ने मुसकराते हुए कहा। कुछ देर सोच में पड़ गया रघुवीर, वंशीलाल उसके चेहरे पर आते-जाते भावों को पढ़ने की कोशिश करते रहे।

''आपने मेरी जान बचाई, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।'' रघुवीर बेड से उठकर जाने को हुआ।

''कहाँ जाओगे?''

''कहीं भी।''

''फिर भी?''

''मालूम नहीं।''

''मेरे साथ चलो।''

''कहाँ?''

''दिल्ली।''

''क्या करूँगा?''

''नया जीवन शुरू करोगे।''

''किसके लिए?''

वंशीलाल को इतने दिनों में उससे अब एक प्रकार का लगाव सा हो गया था, ठीक अपने बेटे की तरह।

''अब मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगा, चलो मेरे साथ।'' वंशीलाल ने साधिकार उसका हाथ पकड़ लिया।

कुछ नहीं बोला रघुवीर। चुपचाप उनके साथ चलने लगा।

वंशीलालजी ने दिल्ली के लिए टैक्सी बुक कर ली। लगभग पाँच घंटे के सफर के पश्चात् टैक्सी ने दिल्ली की सीमा में प्रवेश किया। रास्ते भर दोनों में कोई खास बात नहीं हुई।

रघुवीर के मन में कई खयाल आते-जाते रहे। न जाने कौन होगा यह आदमी, क्या करता होगा? कहाँ ले जाएगा मुझे?

दूसरी ओर वंशीलाल भी गंभीर थे, पूरे एक माह बाद वे अपना सबकुछ लुटाकर दिल्ली वापस पहुँच रहे थे। सबकुछ होते हुए भी अब उनके पास जीने का कोई उद्‌देश्य नहीं बचा था।

रात गहरा गई थी। लंबी-चौड़ी सड़कों को पार करते हुए टैक्सी एक विशाल इमारत के गेट पर रुकी तो दोनों की विचार-तंद्रा टूटी। वंशीलाल टैक्सी से नीचे उतरे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कोठी पूरी तरह रोशनी से जगमगा रही थी।

''उतरो।'' रघुवीर को इशारा कर वे उत्सुकतावश तेज कदमों

से प्रवेश द्वार की ओर बढ़े।

''कौन?'' दरबान गेट के दूसरी ओर बीचोबीच आ खड़ा हुआ था। दूसरे ही क्षण वह ऐसे कँपकँपाने लगा कि सैल्यूट करना भी भूल गया।

''सेठ जी, आ···प···जिंदा हैं?'' बमुश्किल बोल पाया वह।

विशाल लोहे के गेट के बीच में बने छोटे गेट को स्वयं ही खोलकर वंशीलाल अंदर प्रवेश कर गए। पीछे-पीछे रघुवीर भी। तेज कदमों से चलते हुए वे मुख्य दरवाजे पर पहुँचे और भरपूर ताकत के साथ धक्का देकर दरवाजा खोल दिया।

अंदर पार्टी के जैसा दृश्य था। वंशीलाल के दोनों भाई-भाभी, उनके बच्चे, दोनों बहन-बहनोई सब हॉल में बैठे हुए दावत उड़ा रहे थे। दरवाजे पर खड़े वंशीलाल को देखकर सबकी चीख निकल गई, मानो साक्षात् भूत देख लिया हो।

''भा···ई साहब, अ···आ प जिंदा हैं?'' आश्चर्य से सबके मुँह से एक साथ निकला।

''हाँ कमीनो! मैं जिंदा हूँ। अच्छा नहीं लगा न मुझे जिंदा देखकर।'' दाँत पीसते हुए वंशीलाल बोले, ''क्यों? मेरी बरबादी की खुशी में पार्टी चल रही थी? रंग में भंग पड़ गया न!''

जो जैसा था, उसी अवस्था में गरदन झुकाकर भागता नजर आया। वंशीलाल सिर पकड़कर सोफे पर पसर गए, स्वार्थी रिश्तों की असलियत ने उन्हें अंदर तक झकझोर दिया था। कितने स्वार्थी हैं सब, मेरे और मेरे परिवार की मृत्यु पर सरकार से पाँच-पाँच लाख रुपए का मुआवजा लेकर खुशियाँ मना रहे थे, वह भी उस जगह, जहाँ उन्हें मातम मनाना चाहिए था। चौकीदार और घर के नौकर ने उन्हें सबकुछ बता दिया था। रात भर वे सोचते रहे।

सुबह ही उन्होंने रघुवीर को अपने पास बुला लिया।

''बेटा! अब यह सब तुम्हारा है। यह घर, कंपनी, फैक्टरी, स्कूल सबकुछ। आज से तुम सारे काम सँभालोगे।'' उनकी आँखें छलछला आईं।

रघुवीर की आँखों में भी आँसू आ गए। उसने वंशीलालजी की तरफ देखा, उनकी भीगी हुई आँखों में एक अजीब तरह की चमक थी। पास आकर उन्होंने रघुवीर को गले लगा लिया। दोनों एक-दूसरे से लिपटकर रोने लगे, दिल का दर्द पिघलकर आँखों के रास्ते आँसुओं के रूप में झरने लगा था। सच ही कहते हैं, जीवन में कुछ रिश्ते टूट जाते हैं तो कुछ नए बन भी जाते हैं।

□

तलाश अपनों की

वह लोगों की उत्सुकता का केंद्र बना हुआ था। जो भी उसे देखता उसके बारे में जानने के लिए लालायित हो उठता। लोग उसे ऐसे देखने लगते, जैसे वह किसी अन्य ग्रह से आया हुआ प्राणी हो।

लंबी-चौड़ी कद-काठी, पाँवों में चमड़े के भारी बूट, सिर पर कैप, पीठ में पिट्ठू और पिट्ठू पर पीछे की ओर वर्गाकार पोस्टर चिपका हुआ। पोस्टर में एक अधेड़ व्यक्ति का चित्र छपा हुआ। छाती पर भी एक फीट वर्गाकार की स्लेट, स्लेट पर वही पोस्टर चिपका हुआ, और पोस्टर के नीचे लिखी हुई थी इबारत—'ये मेरे पिताजी हैं—श्री रामरतन कुशवाहा। उम्र—पचपन वर्ष। क्या किसी ने इन्हें कहीं देखा है?'

पच्चीस वर्षीय यह नौजवान ऋषिकेश से केदारनाथ की पैदल यात्रा कर रहा था। यात्रा का उद्देश्य था केदारनाथ आपदा में लापता हुए अपने पिता को ढूँढ़ना। वह हर कस्बे और हर बाजार में घूम-घूमकर अपनी तर्जनी उँगली से छाती पर चिपकी पिता की तसवीर की ओर इशारा करके आने-जानेवालों से पूछता, ''भाई साहब, क्या आपने इन्हें कहीं देखा है?''

लोग उसके पिता की तसवीर की ओर कम देखते, उसकी ओर ज्यादा। पूरे पंद्रह दिन से पैदल घूम रहा है वह केदारघाटी में। उसके

जज्बे को देखकर लोगों में उसके प्रति जिज्ञासा पैदा होती, कौन होगा? कहाँ से आया होगा? कितना प्रेम है इसका अपने पिता के प्रति। हर किसी के दिल में उसकी कहानी जानने की उत्सुकता रहती।

कम दर्द भरी नहीं है उसकी कहानी। मध्य प्रदेश का रहनेवाला यह युवा भारतीय सेना में कश्मीर घाटी के एक संवेदनशील सेक्टर में तैनात है। केदारनाथ में आई आपदा में पिता कहीं लापता हो गए। उनके जिंदा होने या मरने का कोई भी प्रमाण नहीं है। यह फौज से एक महीने की छुट्टी लेकर पिछले पंद्रह दिनों से पिता की तलाश में केदारघाटी में दर-दर भटक रहा है।

सुधीर नाम का यह युवा अपने पिता रामरतन कुशवाहा की एकमात्र संतान है। एक साल का था तब माता की तपेदिक से मृत्यु हो गई। पिता कृषक थे। मध्यमवर्गीय परिवार था। पक्का घर, आँगन और दस बीघा कृषि भूमि, जिस पर काश्तकारी से घर-परिवार का गुजारा अच्छी तरह चल जाता था। पत्नी की मृत्यु के समय रामरतन की उम्र यही कोई तीस-इकतीस वर्ष रही होगी, लेकिन बेटे के खातिर उन्होंने दूसरी शादी नहीं की। हालाँकि उनकी हैसियत को देखते हुए अनेक अच्छे-अच्छे रिश्ते भी आए, लेकिन उन्होंने शादी से साफ मना कर दिया।

रामरतन के मन में यह बात बैठ गई थी कि शादी के बाद कहीं बेटे की दुर्दशा न हो जाए। यह बात मन में इसलिए भी बैठी थी कि अपने ही गाँव में मनोहर चाचा के घर की किच-किच और सौतेले बच्चों की दुर्दशा प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में रोज ही दिख जाती थी। मनोहर चाचा ने पत्नी के मरने के बाद दूसरी शादी कर ली थी। शादी क्या की थी, अपने लिए जिंदगी भर की कलह मोल ले ली थी। नई पत्नी ने अपना बच्चा पैदा होने के बाद सौतन के दो बच्चों की बेकदरी शुरू कर दी थी। इस पर रोज ही चाचा-चाची में

कलह होती थी, तो बच्चों की दुर्गति अलग से हो रही थी। बेचारे बच्चे डरे-सहमे से दुबके रहते।

यह सब देखकर रामरतन के मन में दूसरी शादी के प्रति खौफ और घृणा पैदा हो गई थी। उन्होंने बेटे को गले लगा लिया और उसी के पालन-पोषण में अपनी जवानी समर्पित कर दी।

बहुत कम लोग होते हैं ऐसे, जो अपने भविष्य को दूसरे के भविष्य के लिए भेंट चढ़ा देते हैं। रामरतन ने भी अपने बेटे के भविष्य के लिए इतना लंबा वैधव्य जीवन झेला। उन्होंने सुधीर को माँ और पिता दोनों का प्यार दिया। सुधीर जब सोचने-समझने लायक हुआ तो लोगों से अपने पिता के वैधव्य जीवन और संघर्ष के बारे में सुनता। उसका मस्तक पिता के प्रति श्रद्धा से नत हो उठता। कितना प्यार दिया है पिता ने उसे, कभी कोई कमी नहीं खलने दी माँ की। मेरी खुशी के लिए कितना लंबा एकाकी जीवन झेला है पिता ने।

बीस साल का होते-होते सुधीर सेना में भरती हो गया था।

''पिताजी, अब आप खेती-पाती का चक्कर छोड़िए और आराम से बदरी-केदारजी की यात्रा करके आइए।'' सुधीर कई बार पिता से कहता।

''हाँ बेटा, जरूर जाऊँगा बदरी-केदार, पर पहले तेरी शादी हो जाए। इस घर को सँभालनेवाली को सबकुछ सौंप दूँ तो फिर मैं भी मुक्त हो जाऊँ इस जाल से।'' पिता कहते।

इनसान की अभिलाषाओं का कभी कोई अंत नहीं होता। दरअसल यह सांसारिक मायाजाल इनसान को किसी-न-किसी रूप में उलझाए रखता है। माया-मोह के बंधन में इनसान ऐसा फँसता है कि बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। रामरतन भी कुछ इसी तरह के मोह में फँसे थे। बेटे की शादी हुई तो अब पोते का मोह जाग उठा।

''पोते का मुँह देख लूँ तो फिर मैं मुक्त हो जाऊँ।'' अब रामरतन को नया बहाना मिल गया।

एक साल बाद पोता हुआ तो घर में जैसे खुशियों की बहार आ गई। रामरतन के एकाकी जीवन को बहलाने के लिए तो जैसे खिलौना मिल गया। वे एक घड़ी भी पोते को नहीं छोड़ते।

सुधीर ने तो अब फैसला कर ही लिया था कि इन छुट्टियों में वह जरूर पिता को हरिद्वार ले जाकर गंगा नहलाएगा और बदरी-केदारजी की यात्रा कराएगा। इसलिए यात्रा शुरू होने से पूर्व ही उसने छुट्टी के लिए आवेदन कर दिया।

सीमा पर पड़ोसी मुल्क द्वारा समय-समय पर गोला-बारूद दागकर उकसावे की काररवाही की जाती रही है। इन दिनों भी कुछ ऐसा ही हुआ और दोनों देशों के संबंधों में खटास के चलते जवानों की छुट्टियों को रद्द कर दिया गया।

सुधीर ने पहले ही गाँव के सभी बूढ़ों को पिता के साथ यात्रा हेतु तैयार कर लिया था। साथ ही कहला दिया था कि वह सबको अपने खर्चे पर यात्रा करवाएगा। पिता को यात्रा करवाने की अपनी अभिलाषा को धुँधला पड़ता देख उसने टेलीफोन से पिता को कह दिया कि वे सब लोगों को लेकर यात्रा पर चले जाएँ। उसने मनीऑर्डर से यात्रा खर्च भी भेज दिया।

कुल मिलाकर सोलह लोगों को साथ लेकर रामरतन ने यात्रा पर जाने की तैयारी की। यात्रा पर गए उन्हें अभी सिर्फ पाँच दिन ही हुए थे कि टेलीविजन और अखबारों में केदारनाथ में भारी जल-प्रलय की खबरें सुनकर सुधीर की पत्नी चिंतित हो उठी। उसने टेलीफोन से यह समाचार सुधीर तक पहुँचाया। समाचार पाकर चिंता सुधीर को भी हुई, लेकिन उसे ईश्वर पर बड़ा विश्वास था। उसे यकीन था कि पिता सकुशल लौट आएँगे।

एक माह गुजर जाने के बाद भी पिता नहीं लौटे; लेकिन पिता के साथ गए सोलह लोगों में से बारह एक-एक कर लौट आए। उन्होंने बताया कि आपदावाले दिन भगदड़ में सब एक-दूसरे से बिछड़ गए थे।

सुधीर पिता को ढूँढ़ने के लिए छुट्टी लेकर आ गया और पिछले पंद्रह दिनों से केदारघाटी की खाक छान रहा है। उसे विश्वास है कि उसके पिता जीवित होंगे और वह उन्हें अवश्य ढूँढ़ निकालेगा।

जैसे-जैसे दिन निकल रहे थे, सुधीर का मन अधीर होता जा रहा था। जो विश्वास उसको कल तक चलने के लिए प्रेरित कर रहा था, आज उसी विश्वास की पकड़ थोड़ी ढीली पड़ने लगी थी। अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए वह गुप्तकाशी जा पहुँचा।

वहाँ जाकर उसे सूचना मिली कि कुछ लोगों को एक गैर-सरकारी संगठन ने राहत शिविर में रखा है। सुधीर ने जब फोटो दिखाकर पूछा तो एक व्यक्ति बोला, ''बेटा, कुछ दिन पहले मैंने इस व्यक्ति को इसी कैंप में देखा था, अंदर जाकर पता करो। क्या पता तुम्हें ये वहीं मिल जाएँ।'' उस व्यक्ति के मुँह से यह बात सुनकर सुधीर की खुशी का ठिकाना ही नहीं था, ''थैंक्यू सर! थैंक्यू वैरी मच।'' उत्सुकतावश उस व्यक्ति के हाथ कसकर पकड़े सुधीर बोला।

एक बार वही विश्वास, जो घर से निकलते समय सुधीर के मन को मजबूत कर रहा था, उसने पुन: सुधीर को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर दिया। लंबे डग भरता हुआ सुधीर उस कैंप में गया, जहाँ की सूचना उसे मिली थी। आशा भरी नजरों से वह इधर-उधर अपने पिताजी को तलाशने लगा। वह एक-एक व्यक्ति के पास जाता, किसी व्यक्ति को पीछे से देखने पर उसे अपने पिता का अक्स नजर आता, वह दौड़कर उस व्यक्ति के पास जाता और फिर''फिर वही मायूसी उसके चेहरे पर आती। काफी देर तक इधर-उधर ढूँढ़ने के

बाद भी जब उसे अपने पिता नहीं दिखाई दिए तो वह कैंप के ही एक व्यक्ति के पास गया और अपने पिताजी की फोटो दिखाकर पूछने लगा, ''सर, क्या आपने इन्हें यहाँ देखा है?''

वह व्यक्ति बोला, ''आप कौन हैं इनके?''

सुधीर बोला, ''मैं इनका बेटा हूँ।''

उस व्यक्ति ने सुधीर के कंधे पर हाथ रखकर कहा, ''बेटा, दो दिन पहले यह व्यक्ति किसी को बिना बताए पता नहीं कहाँ चले गए। उन्हें किसी ने जाते नहीं देखा; लेकिन हाँ, यह व्यक्ति दो दिन पूर्व तक यहाँ ठहरे थे। आप कहीं और जाकर तलाशिए।''

एक बार फिर विश्वास की वह डोर टूट गई। न जाने कितनी बार हिम्मत हारकर भी खड़ा हुआ सुधीर, शायद इसी आस में कि कभी तो किसी जगह पर उसकी मुलाकात अपने पिताजी से हो।

बहुत टूट चुका था सुधीर, इतना कि अब चलने की हिम्मत भी न बची थी, लेकिन केवल एक बात कि 'इस व्यक्ति को दो दिन पहले यहाँ देखा था।' उसके लिए संजीवनी का काम कर रही थी और उसको चलने की हिम्मत दे रही थी। अगली सुबह सुधीर उठा और चल पड़ा। एक आह भरकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगा, ''हे ईश्वर! मुझे मेरे पिताजी से मिला दो।''

आज फिर उसके मन में एक आस थी कि उसे उसके पिता अवश्य मिलेंगे।

पर कब, कहाँ, किस हाल में? यह सब तो भविष्य की गहराइयों में था, लेकिन सुधीर फिर भी चल पड़ा था अपनी तलाश पूरी करने।

□

कितना खुद्दार

मैं भी उन खुशनसीबों में एक हूँ, जो उत्तराखंड के केदारनाथ में आई भीषण आपदा में परिवारसहित सुरक्षित बचकर वापस अपने घर पहुँच गए हैं।

इस यात्रा का यह कटु अनुभव मेरे जीवन में कभी न भुलाए जानेवाले एक अध्याय की तरह जुड़ गया है; लेकिन इन्हीं कटु अनुभवों के बीच एक ऐसा मधुर अनुभव भी है, जो दिल में हमेशा जीते-जी ताजा रहेगा।

माँ-पिता और पत्नी तथा दोनों बच्चों के साथ गुजरात के वडोदरा से हम चारधाम यात्रा के लिए निकले थे। बहुत समय से माताजी और पिताजी को तीर्थयात्रा कराने की इच्छा थी; लेकिन सरकारी नौकरी की बाध्यताओं के चलते यह इच्छा मन में ही दबकर रह गई थी। कभी ऑफिस का कोई महत्त्वपूर्ण सेमिनार तो कभी रिश्तेदारों का घर में आगमन, कभी परिवार में कोई विवाह समारोह तो कभी माताजी का स्वास्थ्य खराब, हर वर्ष गरमियों में किसी-न-किसी बहाने यात्रा टल ही जाती।

पिताजी ने उम्र भर मेहनत और ईमानदारी से नौकरी करके अपना जीवन सादगी और सरलता में बिताया। रेलवे के एक साधारण क्लर्क की नौकरी में उन्होंने हम दोनों भाई-बहनों को उच्च शिक्षा दिलाई। पहले दीदी की शादी की और फिर मेरी भी। पाई-पाई करके

माताजी ने जो पैसे जोड़े, उससे पिताजी ने यहीं वडोदरा में एक प्लॉट खरीदा और फिर रिटायरमेंट के पैसों से मेरे लिए घर भी बनाया। मैंने अपने जीवन-काल में होश सँभालने के पश्चात् कभी माँ और पिताजी को शानो-शौकत करते नहीं देखा। पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते उन्होंने अपना जीवन अत्यंत सादगी में प्रभु को याद करते हुए जिया।

चार साल पहले मेरी नौकरी सरकार के संचार विभाग में लग गई और दो बच्चे भी हो गए। अच्छा पद और अच्छा वेतन पाने के बावजूद मैं माँ और पिताजी के लिए कुछ नहीं कर पाया। मैं उनके लिए कर भी क्या सकता था! वे अपने आप में संपूर्ण थे, लेकिन मन में हमेशा उन्हें चारधाम यात्रा करवाने की इच्छा थी, जो इस साल पूरी होने जा रही थी।

ऋषिकेश पहुँचकर हमने एक ट्रैवलिंग एजेंसी से इंडिका कार किराए पर ले ली। गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की यात्रा सकुशल करने के पश्चात् हम केदारनाथजी की यात्रा के लिए चल निकले। यात्रा के ये पाँच दिन अत्यंत सुखद रहे। बच्चे कार ड्राइवर मंगल सिंह से खूब घुल-मिल गए थे। जिस भी पड़ाव में हम रुकते, मंगल सिंह वहाँ बच्चों को घुमाने बाजार ले जाता। पिताजी भी उसके शालीन स्वभाव और नम्रता से बेहद प्रभावित थे। चलते-चलते सफर के दौरान अकसर पिताजी उससे बातें करते रहते और उत्तराखंड के बारे में अनेक प्रश्न पूछते रहते।

कभी-कभी पिताजी उससे उसके निजी जीवन के बारे में भी पूछताछ करते। उन दोनों की बातचीत के आधार पर ही मुझे मालूम हुआ कि मंगल पहाड़ के रुद्रप्रयाग जिले का रहनेवाला है, जहाँ भगवान् केदार का मंदिर है। वह बी.ए. पास है और गरीब परिवार का है। पिताजी खत्म हो गए हैं, माँ और पढ़नेवाले दो भाई-बहनों की जिम्मेदारी उसके कंधों पर है। उसने सरकारी योजना से ऋण लेकर

साढ़े चार लाख रुपए में यह टैक्सी खरीदी है और ट्रैवलिंग एजेंसी के माध्यम से खुद चला रहा है। बदले में ट्रैवलिंग एजेंसी को कुल बुकिंग की दस प्रतिशत कमीशन देनी पड़ती है।

खैर, मुझे इन सब बातों से उस समय कोई रुचि नहीं थी। लाखों लोग हैं दुनिया में, जो संघर्ष कर रहे हैं, जीने के लिए मेहनत तो करनी ही पड़ती है। यह अलग बात है कि लोगों के कर्मक्षेत्र अलग-अलग हैं, लेकिन इतना जरूर है कि मुझे उसका स्वभाव अच्छा लगा था, व्यावसायिक के साथ-साथ अपनत्व भरा भी।

छठे दिन हमारा पड़ाव था सोनप्रयाग। मंगल ने ही यह सलाह दी थी कि रात्रि विश्राम सोनप्रयाग में करें, साफ-सुथरा भी है और कम भीड़-भाड़वाला भी। एक होटल में हमने दो कमरे बुक कर लिये और जरूरत भर का सामान अपने साथ लेकर अटैची और एक बैग टैक्सी में ही छोड़ दिया। मंगल गाड़ी के अंदर ही सोता था, इसलिए कोई डर नहीं था, पिछले पाँच दिनों से हम यही कर रहे थे।

सुबह हमें सोनप्रयाग से दस कि.मी. टैक्सी द्वारा गौरीकुंड तक जाना था और उसके पश्चात् केदारनाथ तक पैदल यात्रा करनी थी। लंबे सफर के पश्चात् थकान से सबके शरीर चूर थे, सो जल्दी उठने की गरज से सब लोग खा-पीकर जल्दी ही सो गए।

सुबह आठ बजे के लगभग जैसे ही हम होटल की सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि 'भागो-भागो, बाढ़ आ गई! बाढ़ आ गई!' का शोर सुनाई दिया। जान बचाने के लिए माँ-पिता और पत्नी-बच्चों के साथ हम लोग भी पहाड़ी की ओर दौड़े, जहाँ अन्य लोग दौड़ रहे थे। फिर तो सबको जान बचाने की पड़ी थी, क्षण भर में ही नदी के रौद्र रूप ने सोनप्रयाग का नक्शा बदल दिया। कल का सुंदर सजा-धजा और जगमगाता हुआ सोनप्रयाग अब रेत, मलबे और पत्थरों के ढेर में कहीं दब सा गया था। हमें नहीं मालूम कि इस

तबाही में कितने लोग हताहत हुए होंगे। हम तो बस अपनी जान बच जाने का शुक्र मना रहे थे।

तभी अचानक मुझे मंगल सिंह का ध्यान आते ही फिर अपने सामान की याद आई, जो टैक्सी में रखा हुआ था।

याद आते ही मेरे होश उड़ गए, क्योंकि नजरों के सामने न सोनप्रयाग बाजार था और न वहाँ खड़े सैकड़ों छोटे-बड़े वाहन। सारे-के-सारे नदी में बहकर कहीं दूर चले गए थे। टैक्सी में रखी अटैची में हमारे पचहत्तर हजार रुपए भी थे। मंगल सिंह न जाने कहाँ होगा, उसका क्या हुआ होगा, जीवित भी होगा या नहीं? उससे ज्यादा दु:ख मुझे अपनी मेहनत और ईमानदारी की कमाई का इस तरह से नदी में बह जाने का था। मन में एक कसक सी उठ रही थी, लेकिन मन को फिर भी यह सांत्वना दिए जा रहा था कि चलो, रुपया गया कोई बात नहीं, जान तो बच गई।

मंगल सिंह का पता नहीं चला। दूसरे दिन हम कई किलोमीटर पैदल चलते हुए रामपुर पहुँचे और फिर सपरिवार किसी तरह से वापस अपने घर वडोदरा आ गए।

तब से पूरा एक माह बीत गया, उस दिन का दृश्य भूले नहीं भूलता। जब-जब याद आती है, तब-तब पचहत्तर हजार रुपया बह जाने का दु:ख भी मन को आहत कर देता। प्रभु की मरजी समझकर मैं मन को शांत कर लेता।

एक दिन सुबह-सुबह घर की घंटी बजी। कौन होगा इतनी सुबह? सोचकर मैं अनमने मन से गेट खोलने गया तो सामने मंगल सिंह को खड़ा देखकर मैं हतप्रभ रह गया, उसके एक हाथ में हमारी अटैची और दूसरे में बैग था।

''अरे, आओ-आओ, तुम कुशल तो हो न?'' मैंने उसे अंदर बुलाते हुए पूछा।

''हाँ जी, आपके सामने खड़ा हूँ तो कुशल ही हूँ।'' वह बोला।

''यह सामान...? मतलब गाड़ी बच गई थी न?'' मैंने आश्चर्य से पूछा।

''जी नहीं, उसका तो पता ही नहीं चला।''

''फिर हमारा सामान...?'' मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था।

''जिस समय बाढ़ आई तो मैं गाड़ी की सफाई कर रहा था। जल्दबाजी में कुछ नहीं सूझा। आप मेरे ग्राहक थे, इसलिए आपका सामान बचाना मेरी जिम्मेदारी थी, बस आपका बैग और अटैची उठाकर पहाड़ी की ओर भागा। उसके बाद आपको गुप्तकाशी से लेकर ऋषिकेश तक कई दिन तक ढूँढ़ता रहा। आप नहीं मिले तो अटैची का ताला तोड़कर अंदर रखे कुछ कागजों से आपका पता ढूँढ़कर यहाँ तक पहुँचा हूँ। मुझे अटैची का ताला तोड़ना पड़ा, इसके लिए माफी चाहता हूँ। इसके अंदर ये रुपए भी रखे हुए थे, जो मैंने सुरक्षित रख लिये थे।''

उसने नोटों का बंडल मेरे हाथों में थमा दिया। मैं उसका मुँह ताकता रह गया।

''अच्छा, चलता हूँ।'' वह जाने लगा कि इतने में पिताजी भी बाहर आ गए। उसने पिताजी के पैर छुए।

''मंगल, कैसे हो तुम? ईश्वर का धन्यवाद कि तुम्हारी जान बच गई।'' पिताजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा।

''जी, जान तो बच गई, किंतु बाकी कुछ नहीं बचा। घर और खेत-खलिहान भी सब बह गए।'' वह दुखित होकर बोला।

''गाड़ी का तो इंश्योरेंस मिल गया होगा?'' पिताजी ने पूछा।

''नहीं जी, जल्दबाजी में गाड़ी के कागज नहीं निकाल पाया। बीमा कंपनी ने क्लेम देने से मना कर दिया।''

मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। कैसा आदमी है यह? हमारे सामान के लिए इसने अपने लाखों रुपयों का नुकसान कर दिया।

मैं क्या बोलूँ? इसका शुक्रिया अदा करूँ तो कैसे? किन शब्दों में? मेरी समझ में नहीं आ रहा था, मेरा मन बहुत भारी हो चला था। उसकी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता के आगे कुछ बोलने के लिए नहीं था मेरे पास।

मैंने उसको रुपए वापस देते हुए कहा, ''ये सारे रुपए आप रख लो, अपनी ईमानदारी का ईनाम समझकर। इस मुसीबत में आपके काम आएँगे।'' उसने रुपए नहीं लिये।

''नहीं जी, मुझे ईनाम नहीं चाहिए, मुझे तो अपनी मेहनत का मूल्य चाहिए। दे सको तो मेरी गाड़ी का छह दिन का किराया सात हजार दो सौ रुपए दे दीजिए बस।'' वह स्वाभिमान से बोला।

कितना खुद्दार आदमी है यह! इतना नुकसान उठाने और अपना किराया लगाकर यहाँ तक आने के बाद भी सिर्फ मेहनत का मूल्य माँगता है। मुझे लगा मानो यह मंगल सिंह नहीं, साक्षात् केदारनाथ भगवान् मेरे दरवाजे पर खड़े हैं। बरबस मेरे दोनों हाथ और मस्तक उसके चरणों में झुक गए।

□

लौटकर आएगा

सुबह से ग्राहकों की सेवा करते-करते सायं को उसका बदन चूर हो जाता। रात गए घर पहुँचता तो निढाल होकर चारपाई पर ऐसे लुढ़क जाता, मानो वर्षों से नींद पूरी न हुई हो।

तीन महीने हो गए थे उसे देहरादून के इस होटल में काम करते हुए। इन तीन महीनों में उसने जो कुछ भोगा, उसे केवल वही जानता है या फिर उसका ईश्वर। पत्नी और बच्चों तक को यह मालूम नहीं है कि वह कहाँ काम करता है और क्या काम करता है। वह उन्हें बतला भी नहीं सकता कि वह एक बड़े होटल में रूम अटैंडेंट के रूप में काम कर रहा है। उसकी मजबूरी है यह। उसने तो घर में यही बताया है कि वह किसी कंपनी के ऑफिस में काम करता है और मीटिंग-सीटिंग के चक्कर में रोज देर हो जाती है।

''कैसा ऑफिस है आपका, जो रात के नौ-दस बजे तक खुला रहता है?'' पत्नी कई बार पूछती, लेकिन वह हँसकर टाल देता। वह भी बेचारी ज्यादा जिद नहीं करती। पूछकर भी उसे हासिल होना क्या है। इस समय उनकी जरूरत परिवार चलाना है, जिसे गंभीर सिंह पिछले तीन महीने से बखूबी चला रहा है।

उसका व्यवहार और शालीनता देखकर होटल मालिक गुप्ताजी अत्यंत प्रसन्न थे। साफ-सुथरे कपड़ों में वह अपने ड्यूटी समय से

पंद्रह मिनट पहले होटल में पहुँच जाता और फिर दिन भर मुस्तैदी के साथ चुपचाप अपने काम पर लगा रहता। इन तीन महीनों में एक भी बार उसकी तरफ से लापरवाही की कोई शिकायत न तो किसी ग्राहक ने की और न होटल मैनेजर ने।

गंभीर नाम था उसका, और नाम के अनुरूप ही उसका स्वभाव भी अत्यंत गंभीर था। बहुत कम बोलता था किसी से भी, मतलब की बात के अलावा एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकलता था। अपनी काँच की कैबिन से गुप्ताजी की उस पर नजर पड़ती रहती थी। कई बार गुप्ताजी को उसका जीवन अत्यंत रहस्यमय लगता। उनके मन में उसके बारे में जानने की उत्सुकता बनी रहती।

''गंभीर को भेजो जरा।'' इंटरकॉम से उन्होंने होटल के मैनेजर को निर्देश दिया।

''मे आई कम इन सर?'' कुछ ही देर में गंभीर अदब के साथ उनकी केबिन के दरवाजे पर खड़ा था।

''कम इन एंड सिट डाऊन।'' गुप्ताजी बोले।

''नो सर! आई एम सॉरी, बिकाउज आई एम नॉट इलेजिबिल टू सिट इनफ्रंट ऑफ यू।'' वह सिर झुकाकर बोला।

उसकी शिष्टता और शालीनता भरे उत्तर से एक ओर गुप्ताजी अत्यंत प्रभावित हुए तो दूसरी ओर सुंदर अंग्रेजी में दिए गए उसके उत्तर से उनकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं।

''बैठो, तुमसे कुछ पूछना है।'' गुप्ताजी ने जैसे निर्देश दिया तो 'थैंक्स सर' कहता हुआ वह बैठ गया।

''गंभीर, आपको तीन महीने हो गए हैं हमारे यहाँ, लेकिन हमें आपके बारे में कोई खास जानकारी नहीं है।'' गुप्ताजी ने सहृदयता से कहा तो एक मिनट के लिए वह अचकचा गया।

''नहीं, बुरा मत मानना। इट्स नाट ऑफिशियल, बस ऐसे ही

निजी रूप से पूछ रहा हूँ।'' गुप्ताजी ने अपनत्व से कहा, तो उसने अपने बारे में बताना शुरू किया।

कहते हैं कभी घी भर घड़ा और कभी मुट्ठी भर चना। समय हमेशा एक समान नहीं रहता। जो लोग समय के साथ-साथ चलते हैं, वे कभी मात नहीं खाते, लेकिन कई बार सबकुछ प्रयास करने के बाद कभी-कभी प्रकृति की क्रूर क्रिया इनसान को रुला देती हैं, वह कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि प्रकृति के आगे वह बेबस है।

यही बेबसी तो थी गंभीर की भी। प्रकृति ने उसे कहाँ-से-कहाँ लाकर खड़ा कर दिया था। प्रकृति के सामने वह लड़ तो नहीं सकता था, लेकिन उसने हौसला नहीं छोड़ा।

नौकर-चाकर और यात्रा मार्ग पर एक विशाल होटल का मालिक था गंभीर सिंह। बचपन से ही मेधावी और पढ़ने में तेज। पिता का एक छोटा सा होटल था यात्रा मार्ग पर, उसी से परिवार का गुजारा करके उन्होंने गंभीर को एम.ए. तक की शिक्षा दी थी। इंटर तक गाँव के नजदीक की स्कूल में पढ़ाई करने के बाद वह श्रीनगर चला आया था विश्वविद्यालय में। पढ़ाई पूरी करने के बाद उसने पिता के होटल को विस्तार देते हुए उसे नया रूप दिया। उसके व्यवहार और व्यावसायिक नजरिए ने उसे प्रगति की राह दिखाई और व्यवसाय खूब फलने-फूलने लगा।

पैसा आता रहा तो उसे बैंक में जमा करने के बजाय होटल की भव्यता और साज-सज्जा में लगाता रहा। जमा पूँजी के नाम पर उसके पास वही होटल था, जिस पर उसके और उसके पुरखों की सारी कमाई लगी थी। सिंगल रूम, डबल रूम और डोरमैट्री सहित उसके होटल में हर वर्ग की यात्रियों की स्थिति के अनुसार रहने और खाने का अच्छा प्रबंध था। यहीं उसकी शिक्षा काम आई थी। यात्राकाल के छह महीने में ही वह वर्ष भर के लिए अच्छी कमाई

कर देता था, शेष छह महीने लोकल बाजार के हिसाब से रेस्टोरेंट चलाया करता था। कर्मचारियों की कमी नहीं थी। वेटर से लेकर रूम ब्वॉय और किचन स्टाफ सहित कुल सोलह लोगों का स्टाफ था उसके पास, या यों कहिए कि सोलह परिवारों की रोजी-रोटी चलती थी उसके होटल से।

वह खुद पढ़ा-लिखा था, इसलिए अपने बच्चों को भी अच्छी शिक्षा देना चाहता था। उसने देहरादून में एक फ्लैट किराए पर लेकर पत्नी और बच्चों को वहाँ व्यवस्थित कर दिया था।

सबकुछ ठीक चल रहा था, किंतु प्रकृति की क्रूर निगाहों से उसका सबकुछ स्वाहा हो गया। 17 जून को आई जल-प्रलय में दो मंजिला होटल पूरी तरह नदी की भेंट चढ़ गया। होटल स्टाफ के साथ किसी तरह भागकर उसने अपनी जान बचाई।

उसके पास तन पर पहने कपड़ों के अलावा अब कुछ भी शेष नहीं था। पूरे जीवन की पूँजी और पैतृक संपत्ति क्षण भर में ही आँखों के सामने बाढ़ की भेंट चढ़ गई। कई दिन तक उसे सरकारी कैंप के अंदर रातें गुजारनी पड़ीं, सड़कें खुलने पर वह बच्चों के पास देहरादून चला आया। सबकुछ खोने के बाद अब मुँहबाए कई प्रश्न खड़े थे। बच्चों की फीस कहाँ से आएगी, फ्लैट का किराया कहाँ से भरेगा? पहली चिंता यही थी।

मन को कड़ा करके वह इस तीनसितारा होटल में काम माँगने आ गया था। उसके अनुभव और व्यवहार को देखते हुए होटल मालिक ने उसे नौकरी पर रख लिया था। तब से वह जी-तोड़ मेहनत करके अपना कार्य कर रहा है। उसे उम्मीद है कि समय जरूर लौटकर आएगा। अगले वर्ष यात्रा शुरू होने के पश्चात् वह छोटा-मोटा काम करके अपने पैरों पर जरूर खड़ा हो पाएगा।

उसकी पूरी कहानी सुनकर गुप्ताजी की आँखें नम हो उठीं।

कितना अन्याय हुआ है इसके साथ। कल तक जो खुद मालिक था, आज वह नौकर बनकर काम कर रहा है। ईश्वर परीक्षा लेता है, लेकिन परिश्रमी लोग इसमें सफल हो जाते हैं।

‘‘कल से तुम यहाँ नौकरी नहीं करोगे बल्कि अपना होटल समझकर काम करोगे। तुम जैसे मेहनती आदमी की हर संस्थान को जरूरत होती है।’’ गुप्ताजी उसकी पीठ थपथपाते हुए बोले।

□

रिश्तों का भ्रमजाल

स्कूल का नए सत्र का पहला दिन था आज। गरमियों की छुट्टियों में पूरी मस्ती मारने के बाद आज सजे-धजे बच्चे नए उत्साह के साथ स्कूल पहुँच रहे थे। एक-एक कर बच्चों के माता-पिता बच्चों को स्कूल छोड़कर जा रहे थे तो कुछ नन्हे-मुन्नों की उँगलियाँ थामे आ रहे थे।

आठ बज चुके थे, किंतु अब तक स्कूल का मुख्य गेट भी नहीं खुला था। स्कूल की सारी अध्यापिकाएँ और चौकीदार भी अब तक बाहर ही खड़े थे। बाहर भीड़ बढ़ गई तो आने-जानेवालों की भी उत्सुकता बढ़ गई। बच्चों की भीड़ के कारण छोटे-बड़े वाहनों से आने-जानेवालों को भी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था।

''क्या बात हो गई, सर और मैडम कहाँ चले गए?'' स्कूल की अध्यापिकाएँ आपस में चर्चा कर रही थीं।

''बाहर भी गए होंगे छुट्टियों में तो आज तक आ जाना चाहिए था।''

''जसवंत, तुम्हें कुछ पता है? अगल-बगल पूछो तो।'' एक अध्यापिका ने स्कूल के चौकीदार से कहा।

''मैडम, मैं तो छुट्टियों के दौरान आया नहीं; सर ने मना कर दिया था। गेट की चाबी भी उन्हीं को सौंप दी थी।'' जसवंत ने बताया।

किसी को भी कुछ मालूम नहीं था कि स्कूल के मैनेजर राजीव सर और प्रिंसिपल सुमन मैडम कहाँ चले गए हैं। राजीव और सुमन पति-पत्नी थे। पिछले पाँच वर्षों से 'सुमन बाल वाटिका' के नाम से निजी प्राइमरी स्कूल चला रहे थे। दोनों बहुत मिलनसार और खुशमिजाज थे। उनके व्यवहार का ही प्रतिफल था कि बीस बच्चों से शुरू हुए स्कूल की छात्र संख्या आज ढाई सौ तक पहुँच गई थी।

उनके अड़ोस-पड़ोस के लोग बताते हैं कि सुमन और राजीव ने आपस में लव मैरिज की थी। परिवारवालों को रिश्ता मंजूर नहीं था, इसलिए वे परिवार से अलग रह रहे थे।

देहरादून के एक प्रतिष्ठित परिवार से संबंधित था राजीव। पिता पुलिस में इंस्पेक्टर थे, तीन भाई और दो बहनों में राजीव सबसे छोटा और लाड़-प्यार से पला था। ग्रेजुएशन करने के बाद वह श्रीनगर गढ़वाल यूनिवर्सिटी से बी.एड. कर रहा था, वहीं अपनी सहपाठी सुमन के साथ उसे प्यार हो गया। सुमन उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर की रहनेवाली थी, उसके पिता वहाँ नौकरी करते थे।

पढ़ाई के पश्चात् दोनों ने अपने-अपने घर में शादी की बात चलाई, किंतु राजीव के पिता किसी भी तरह से यह अंतर्जातीय विवाह करने को तैयार नहीं थे।

दोनों ने कोर्ट में शादी कर ली। सोचा, कुछ दिन बाद सब सामान्य हो जाएगा, लेकिन शादी करते ही पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया और उनसे अपना कुछ भी रिश्ता न रखने तथा संपत्ति से बेदखल करने का विज्ञापन भी अखबार में दे दिया।

दोनों ने कुछ दिन किराए के एक कमरे में रहकर दिन गुजारे। घर का खर्चा चलाने के लिए राजीव ने एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना शुरू किया तो सुमन ने घर में ही ट्यूशन की क्लासेज खोल लीं।

सबकुछ अच्छा चल रहा था, लेकिन राजीव हमेशा इस आस

में रहता कि कभी-न-कभी घरवाले जरूर उन्हें स्वीकार कर लेंगे। इस दौरान उनके एक बेटा एवं एक बेटी भी पैदा हो गए, लेकिन घरवालों ने उन्हें भी पनाह नहीं दी। उनके लिए तो वे उसी दिन मर गए थे जिस दिन उन्होंने कोर्ट मैरिज की थी। पिता तो दूर, माँ तथा दोनों भाई एवं बहनों ने भी उनसे दूरी बना ली थी।

समय गुजरता गया। बच्चे बड़े हो गए तो राजीव ने एक पूरा मकान किराए पर लेकर खुद का ही स्कूल शुरू कर दिया। पति-पत्नी के अथक परिश्रम से स्कूल चल निकला। अब उनके स्कूल का नाम भी हो गया था और छात्र संख्या भी ढाई सौ के पार पहुँच गई थी। चौकीदार और चपरासी के अतिरिक्त सात अध्यापिकाएँ भी स्टाफ में थीं। स्कूल को वे अपना पूरा समय देते थे। स्कूल की बिल्डिंग के पिछले हिस्से में ही उन्होंने दो कमरों में अपना घर बना रखा था।

नौ बजे तक स्कूल का गेट नहीं खुला तो बच्चे एक-एक कर वापस चले गए। स्कूल के स्टाफ वाले भी उनके बारे में जाँच-पूछ करने अगल-बगल चले गए।

पति-पत्नी, दोनों अपने काम से काम रखते थे, इसलिए अगल-बगलवाले भी उनके बारे में बहुत ज्यादा जानकारी नहीं रखते थे। स्कूल से कुछ दूरी पर दुकान चलानेवाले सुरेश ने बताया कि वे शायद केदारनाथ यात्रा पर गए थे। जाते समय दुकान पर कार रोककर उन्होंने बच्चों के लिए बिस्कुट-चॉकलेट लिये थे, तभी बताया था कि केदारनाथ जा रहे हैं।

बात धीरे-धीरे मुहल्ले में फैल गई और फिर दस किलोमीटर दूर रहनेवाले राजीव के परिवार तक भी चली गई।

दूसरे दिन स्कूल का गेट खुला हुआ था। राजीव के दोनों भाइयों ने आकर गेट का ताला तोड़ा और सभी कक्षाओं के ताले तोड़कर नए ताले खरीदकर चौकीदार को दे दिए। स्कूल शुरू हो गया और सामान्य

रूप से चलने लगा। क्योंकि उनके जीने-मरने की कोई स्पष्ट खबर नहीं आई थी, इसलिए राजीव के पिता ने पुलिस में उनके केदारनाथ में लापता होने की रिपोर्ट भी लिखवा दी थी।

स्कूल अब राजीव के दोनों भाइयों ने पूरी तरह थाम लिया था। वे समय पर आकर प्रिंसिपल और मैनेजर की कुरसियों पर बैठने लगे। कभी-कभार एक चक्कर उसके पिता भी मार देते। अभिभावक आश्वस्त थे कि बच्चों का सत्र खराब होने से बच गया।

आपदा के डेढ़ माह बाद भी उनकी कोई खबर नहीं आई तो प्रशासन ने उन्हें मृतक घोषित कर दिया। छह लाख के हिसाब से उनके परिवारवालों को चौबीस लाख रुपया मुआवजा भी मिल गया।

दो माह गुजर जाने के पश्चात् एक दिन वहाँ हड़कंप मच गया। राजीव, सुमन और उनके दोनों बच्चे अचानक सुबह स्कूल पहुँच गए। तब स्कूल में प्रार्थना चल रही थी। उनको आया देखकर दोनों भाई हड़बड़ा गए।

''अरे, आप लोग जिंदा हो?'' दोनों के मुँह से इसके अतिरिक्त कोई भी बोल नहीं फूटे।

''हाँ भाई, रिश्तों के इस भ्रमजाल को देखने के लिए ईश्वर ने हमें जिंदा रखा है।''

''आप ठीक हैं न सर?'' उनकी स्टाफ सुधा ने पूछा।

''हाँ सुधाजी, केदार बाबा की कृपा से मैं अपने परिवार सहित सकुशल हूँ।''

राजीव लंबी साँस लेते हुए बोला।

''लेकिन सर, आपने दो महीने के बीच में किसी से कोई संपर्क नहीं किया।'' स्कूल के ही दूसरे टीचर विपिन ने कहा।

''नहीं विपिन सर, ऐसा नहीं है कि हम लोग संपर्क नहीं करना चाह रहे थे। पर जब वहाँ पर हमसे पूछा गया कि आप अपने परिवार

के बारे में विवरण दीजिए ताकि उनसे संपर्क हो सकें। एक पल को सुमन और मैं एक साथ अपने माता-पिता का नाम बताने की सोच ही रहे थे कि दूसरे पल खयाल आया कि हमारा कौन सा परिवार है, जो हमारे लिए परेशान होगा…कौन होगा, जो हमारी राह ताक रहा होगा…क्योंकि जिन लोगों को हमें ढूँढ़ना था, उन्होंने आठ साल पहले हमें जीते जी मार दिया था, ऐसे में हमने सोचा ईश्वर ने हम चारों को एक साथ सकुशल रखा है; यही हमारा परिवार है, जो कि हमारी आँखों के सामने था, इसलिए किसी को कुछ बताना हमें जरूरी नहीं लगा। अब जब हम घर वापस आए तो यहाँ के हाल देखकर पुनः आहत हो गए। आखिर जिन्होंने हमें आठ साल पहले मृत घोषित कर दिया था और हमारा मोह त्याग दिया था, आज हमारी मौत की खबर के बाद यह मोह किस चीज का था, क्या सच में जमीन-जायदाद, संपत्ति और पैसे के मायने इनसान की जिंदगी से बढ़कर हैं?''

वहाँ खड़े सभी लोगों के मन में यह बात कौंध रही थी।

'इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो न,
हम चलें नेक रस्ते पे, हमसे भूलकर भी कोई भूल हो न।'

वहाँ उपस्थित सभी लोग तो चुप थे, पर मैदान में प्रार्थना सभा में छात्रों की आवाज पूरे वातावरण में गूँज रही थी।

□

झगड़े का समाधान

दोनों भाई जैसे एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गए थे। पिता के जमाने से चली आ रही दुश्मनी अब जैसे निर्णायक मोड़ पर आ गई थी। घर के बाद गाँव की पंचायत और फिर तहसीलदार, डी.एम. तक जब झगड़े का निस्तारण न हुआ तो मामला कोर्ट तक पहुँच गया था।

मामला छोटा सा था—एक जमीन के टुकड़े को लेकर, लेकिन पीढ़ियों के लिए बैर उत्पन्न कर गया था।

सोबत सिंह और अमर सिंह आपस में चचेरे भाई थे। दोनों के दादा एक थे। भाई-बाँट होने के बाद सोबत सिंह और अमर सिंह के पिता में घर के नजदीक एक खेत को लेकर झगड़ा हो गया था। उसका समाधान नहीं हो पाया तो फिर यह झगड़े की जड़ सोबत सिंह और अमर सिंह के बीच भी आ फँसी।

रौले के इस ओर अमर सिंह का मकान था और दूसरी ओर सोबत सिंह का। यही रौला दोनों की जमीन और मकान के मध्य सीमा रेखा भी थी, लेकिन बताया जाता है कि उनके दादा के समय में सोबत सिंह के घर के नीचे का एक खेत अमर सिंह के पिता के हिस्से में आया था, जिस पर सोबत के पिता का कई साल कब्जा रहा और उनकी मृत्यु के बाद सोबत ने वहाँ पर गौशाला भी बना दी थी। तब से यह विवाद इतना ज्यादा बढ़ा

कि सोबत सिंह और अमर सिंह तो रहे दूर, उनके बच्चों में भी दुश्मनी पैदा हो गई थी।

''अजी! मैं कुछ नहीं जानता, ये अपनी गौशाला उठाकर कहीं भी ले जाए मुझे इससे मतलब नहीं, मुझे तो अपना खेत चाहिए बस!'' गाँव की पंचायत में अमर सिंह ने पंचों के सामने ऐलान कर दिया।

''तेरे बाप का लगता क्या है रौले के इस तरफ? खेत मेरे बाप का था तब भी और अब मेरा है, तुझे जो कुछ करना है कर ले।'' सोबत सिंह भी कम गुस्से में न था।

''ठीक है, देख लूँगा तुझे।'' उसी भाषा में जवाब दिया अमर सिंह ने भी।

''तो देख ले, क्या देखेगा? आ देख ले, जो देखना है।'' सोबत सिंह ने अपनी फौजी कमीज के बाजू बाँहों पर चढ़ाते हुए कहा तो अमर सिंह भी उसके नजदीक आ धमका। हाथापाई की नौबत देखकर पंच बीच में पड़े और दोनों को किसी तरह थामकर अलग किया।

''तू बड़ा फौजी समझता है अपने को, बंदूक की नाल पर है तेरा दिमाग आज भी।'' गुस्से में अमर सिंह बोला, ''मैं मास्टर हूँ, मास्टर। बच्चों को पढ़ाता हूँ मैं।''

''अबे, तू तो बच्चों को पढ़ाता है, मैंने तो भौत आदमी पढ़ाए हैं फौज में तेरे जैसे।''

कोई फैसला होते न देख पंचों ने पंचायत समाप्त कर दी। झगड़ा पहले तहसीलदार तथा डी.एम. के दरबार में पहुँचा और फिर कोर्ट तक पहुँच गया। दोनों एक-दूसरे को नीचा दिखाने और कुछ-न-कुछ नुकसान पहुँचाने का अवसर तलाश करने लगे। दोनों में दुश्मनी इस कदर हो गई थी कि एक-दूसरे की शक्ल तक

नहीं देखना चाहते थे। कोर्ट की पेशी पर रुद्रप्रयाग जाते वक्त एक टैक्सी से सोबत जाता तो दूसरी से अमर सिंह।

अमर सिंह सोबत सिंह से तीन साल बड़ा था और गाँव से कुछ किलोमीटर दूर सरकारी प्राइमरी स्कूल में मास्टर था, जबकि सोबत सिंह फौज से दो साल पहले ही सूबेदार रैंक से सेवानिवृत्त होकर घर आया था। एक ही स्कूल में आगे-पीछे पढ़नेवाले उनके बच्चों में भी इस झगड़े को लेकर रंजिश हो गई थी। वे भी आपस में बात नहीं करते थे।

रौले के इस तरफ और उस तरफ दोनों के घर होने के कारण एक-दूसरे पर नजर पड़ती रहती थी और किसी-न-किसी बहाने दोनों एक-दूसरे को कुछ-न-कुछ सुनाते रहते थे।

गाँववालों को हमेशा लगता कि कभी इन दोनों परिवारों में जरूर कोई बड़ी घटना हो जाएगी। न जाने कौन, कब, किसके घर में घुसकर एक-दूसरे का कत्लेआम कर दे।

''बज्र पड़ेगा उस कूड़ी में जो हमारे खेत में बनी होगी।''

''हाँ-हाँ, बज्र उसकी कूड़ी में पड़ेगा, जो झूठ-मूठ में हमें बोलेगा।''

उनकी घरवालियाँ भी जब-तब अपने चौक से कामकाज करते वक्त एक-दूसरे पर तानाकशी करती रहतीं।

सचमुच बज्र ही पड़ गया था उस दिन। दो दिनों से लगातार चल रही वर्षा के दौरान ऊपर पहाड़ी पर वज्रपात हो गया और ढेर सारे पानी के साथ मलबे का रेला रौले पर उफनाते हुए नीचे की ओर बहने लगा; रौले पर बनी छोटी सी पुलिया पर मलबा आकर ठहर गया और पानी ने अपनी दिशा बदल दी। सारा मलबा अमर सिंह के घर, मकान और गौशाला को बहाते हुए आगे बढ़ गया। दिन का समय होने के कारण अमर सिंह, उसकी पत्नी और

बच्चों ने किसी तरह भागकर अपनी जान बचाई। सारा गाँव इकट्ठा हो गया था यह घटना देखकर। पल्लीपार से सोबत सिंह भी इस तरफ आ गया था। लोग कई तरह की बातें कर रहे थे और अमर सिंह के परिवार को शरण देने के लिए अनेक उपाय सुझा रहे थे। तय किया गया कि फिलहाल गाँव के बीच स्थित पंचायत घर में अमर सिंह अपने परिवार को लेकर रह सकता है, लेकिन सोबत सिंह ने इस पर ऐतराज जता दिया।

''पंचायत भवन में कैसे रह लेगा, क्यों रह लेगा?'' लोगों को लगा कि सोबत सिंह इस मौके पर बेघरबार अमर सिंह को गाँव से बेदखल करके छोड़ेगा। अमर सिंह भी हताश और दु:खी था। इस समय उसकी स्थिति खराब थी। वह समझ गया था कि सोबत सिंह इस मौके का भरपूर लाभ उठाएगा, आखिर उसके मन की हो ही गई थी। अब वह उसे गाँव में भी नहीं रहने देगा, सोबत के मंसूबे उसे ठीक नहीं लगे।

''पंचायत भवन में नहीं रहेगा तो और कहाँ जाएगा।'' प्रधानजी ने दबे स्वर में सोबत से पूछा।

''पंचायत भवन में क्यों जाएगा, उसके बाप-दादा की जमीन-मकान नहीं हैं क्या गाँव में? मैं मर गया क्या? मेरे घर में रहेगा; घर का बँटवारा पंच करेंगे आधा-आधा। एक ही तो घर बहा है, एक तो बचा है, उसी में हिस्सा बाँटेंगे दोनों।''

सोबत सिंह ने कहा तो किसी को विश्वास नहीं हुआ कि यह सोबत सिंह बोल रहा है।

''हाँ, जैसा भी है, पर है तो मेरा बड़ा भाई। लड़ेंगे भी, झगड़ेंगे भी, लेकिन तभी तो, जब दोनों एक-दूसरे के पास रहेंगे।''

और फिर अमर सिंह के आँसू छलक आए। सोबत ने उसके पास जाकर उसे गले लगा लिया। ''भाई, मुझे माफ कर दो, वह

खेत तुम्हारा ही है और मेरे घर में आधा हिस्सा भी तुम्हारा है। दादाजी की ही तो संपत्ति है सब।''

गाँववाले हैरान से एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गए। पिछली पीढ़ी से चले आ रहे झगड़े का समाधान हो गया था।

□

भीड़ के बीच

गुप्तकाशी बाजार में आज काफी हलचल मची हुई थी। पुलिस से लेकर सरकारी विभागों के कर्मचारी-अधिकारी इधर-उधर मँडरा रहे थे। बँगलों, होटलों से लेकर राहत शिविरों तक जा-जाकर कर्मचारी आपदा पीड़ितों का हाल पूछ रहे थे। आज जैसे अचानक यहाँ कोई ईश्वरीय कृपा बरस रही थी।

सड़क के उस छोर पर बंद पड़े सब्जी के एक खाली खोखे के नीचे अपने तीन वर्ष के दुधमुँहे बच्चे को लेकर बैठी धनमति की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, आखिर वह पूछे भी तो किससे? तभी उसे सामने से बूट बजाते हुए कंधे पर बंदूकें थामे पुलिस के चार-पाँच जवानों के साथ एक अफसर आता दिखाई दिया।

''अरे! तू यहाँ बैठी क्या कर रही है?'' पास आकर एक जवान ने रोब से पूछा।

''हजूर, कहाँ जाऊँ? मरद और दो बच्चे गौरीकुंड में लापता हुन छ, कस्तो ठौर ठिकानो छई ना, यहाँ रह रही हूँ, एक महीने से।'' उसने वही बात पुलिसवाले के सामने दोहराई, जो अब तक सबके सामने गिड़गिड़ाती आई थी।

किसी फिल्मी डायलॉग की तरह यह वाक्य अब उसकी जुबान पर पिछले एक माह से बैठ गया था।

''कहाँ की रहनेवाली है?'' अफसर ने एक पैनी नजर उस पर डाली।

''नेपाल की।''

''तो फिर नेपाल जा, यहाँ क्या कर रही है?'' अफसर की टोन एकदम से बदल गई, जैसे मुँह में मीठे के साथ कुछ कड़वा घुस गया हो।

''तुझे मालूम नहीं, आज मंत्रीजी यहाँ आनेवाले हैं, फाटा से टैक्सी द्वारा इसी रास्ते आएँगे, सबसे पहले तुझ पर नजर पड़ी तो फिर सारे लपेट में आ जाएँगे। चल…चल…उठ यहाँ से। कहीं दूर चली जा बाजार से।''

अफसर की रोब के आगे घिग्घी बँध गई बेचारी धनमति की। कुछ नहीं बोल पाई, बच्चे को गोद में उठाकर अपनी गठरी को थामे चुपचाप ऊपर की ओर बढ़ गई।

''चले आते हैं साले यहाँ जनसंख्या बढ़ाने।'' जाते-जाते धनमति के कानों में किसी दूसरे पुलिसवाले का कर्कश स्वर सुनाई दिया।

ऊखीमठ बाजार से लेकर गुप्तकाशी बाजार तक न जाने कितने चक्कर काट चुकी है धनमति, पर न उसे कोई ठौर-ठिकाना मिला और न कोई सरकारी राहत। तीन वर्ष के दुधमुँहे को छाती से चिपकाए धनमति ने किस-किस से गुहार नहीं लगाई, लेकिन किसी ने उसकी नहीं सुनी। पटवारी के चपरासी से लेकर एस.डी.एम. और डी.एम. तक गई वह अपनी फरियाद लेकर, लेकिन सबने उसको विदेशी कहकर टरका दिया। मजबूर होकर यहीं बाजार के उस छोर पर बंद पड़े एक खोखे को उसने अपना आशियाना बना लिया।

बारह वर्ष पूर्व आई थी वह अपने पति दलबहादुर के साथ नेपाल से यहाँ। शादी के बाद रोजी-रोटी चलाने की गरज से दलबहादुर उसको भी साथ ले आया था।

शुरुआती दो-तीन वर्षों तक गाँवों में दिहाड़ी-मजदूरी करके वे अपना गुजर-बसर करते रहे। इस दौरान दो बच्चे हो गए तो वे कुछ

स्थायी रोजगार की तलाश में गौरीकुंड चले आए। रामबाड़ा में दलबहादुर को एक दुकानदार के खच्चर चलाने का काम मिल गया। यात्राकाल में छह महीने तक दलबहादुर तीन-तीन घोड़ों में यात्रियों को लेकर दो-दो चक्कर मारता, इससे उसे अच्छी आय मिलने लगी थी।

धीरे-धीरे दलबहादुर की स्थानीय लोगों से पहचान बनी तो निकट के ही एक गाँव के दिल्ली बस चुके एक परिवार की खाली जमीन को उन्होंने पाँच वर्षों के लिए किराए पर ले लिया और यात्राकाल के बाद वहाँ पर सब्जी उगाने का कार्य शुरू कर दिया। वहीं खाली पड़ी जमीन पर उन्होंने लकड़ी और टिन की सहायता से दो कमरों की एक झोंपड़ी भी बना ली।

भगवान् केदारनाथ की कृपा से अब उनके बच्चे भी सयाने हो चले थे, जिन्हें उन्होंने गाँव की प्राइमरी स्कूल में ही रख दिया। दलबहादुर और उसका सारा परिवार सब्जी उत्पादन में जुट गया तो देखा-देखी स्थानीय लोगों ने भी सब्जी उगाना शुरू कर दिया। लौकी, ककड़ी, फरासबीन, तोरई, करेला, कद्दू और टमाटर की मौसमी सब्जी की सप्लाई दलबहादुर पेटियों में भर-भरकर दूर-दूर तक के बाजारों में करने लगा।

पैसा आने पर दलबहादुर ने अब अपने ही दो खच्चर ले लिये थे, काम अच्छा चल रहा था। यात्रा प्रारंभ होते ही दलबहादुर फिर इस वर्ष भी खच्चरों को लेकर गौरीकुंड चला गया। स्कूल की छुट्टियाँ थीं, इसलिए दस वर्षीय बेटा वरुण बहादुर और नौ वर्षीय वीर बहादुर भी पिता के साथ चले गए।

उस रात धनमति तीन वर्षीय बेटे के साथ अकेली थी। गाँव के ऊपर से हुए भारी भूस्खलन के कारण बरसाती नाला उनकी पूरी खेती झोंपड़ी को रौंदता हुआ आगे निकल गया। किसी तरह से धनमति ने बेटे को गोदी में उठाकर भागकर जान बचाई। गाँव का भी काफी नुकसान

हुआ था। लोग बेघर हो गए थे और शरण पाने के लिए कोई गुप्तकाशी तो कोई अन्य जगह चले गए। धनमति भी गाँव छोड़कर चली आई। गौरीकुंड में आई भीषण बाढ़ में दोनों बेटों और पति का भी आज तक पता नहीं चला।

बेसहारा धनमति दुधमुँहे बच्चे को उठाकर दर-दर फिरती रही, किसी ने उसे डी.एम. के पास जाने को कहा तो किसी ने पटवारी के पास भेजा। एक महीने से बच्चे को दूध पिलाने और खुद दो जून की रोटी खाने के लिए उसे भारी संघर्ष करना पड़ा।

जब उसने सुना कि आज गुप्तकाशी में मंत्रीजी आ रहे हैं तो उसे थोड़ी सी उम्मीद बँधी। उस अफसर और पुलिसवालों द्वारा भगाए जाने के बावजूद वह मंत्रीजी को मिलने की युक्ति सोचने लगी। वहाँ से निकलकर वह पैदल पगडंडी होते हुए धीरे-धीरे मुख्य बाजार की ओर बढ़ गई, जहाँ मंत्रीजी को आना था। बाजार में भीड़ बढ़ गई थी, धनमति भी भीड़ में शामिल हो गई।

ठीक दो बजे मंत्रीजी भारी लाव-लश्कर के साथ पहुँचे तो हर किसी में उनके पास जाने और अपनी बात कहने की जैसे होड़ मच गई। सरकारी अफसरों और पुलिसवालों से घिरे मंत्रीजी एक-एक की बात सुनते हुए आगे बढ़ गए, भीड़ में आगे बढ़ती हुई धनमति हर तरह से मंत्रीजी तक पहुँचना चाहती थी। यही उसके लिए अंतिम और सबसे अच्छा अवसर भी था।

भीड़ के बीच बच्चे का दम घुटने लगा और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। धनमति ने उसे सिर पर उठा लिया। अचानक मंत्रीजी की नजर उस चिल्लाते हुए बच्चे पर पड़ी तो उन्होंने धनमति की ओर उँगली का इशारा करते हुए अपने अगल-बगल चल रहे अफसरों से कुछ कहा। कुछ देर पहले खोखे से उसे दुत्कारकर भगानेवाले पुलिसवाले ही उसे अब भीड़ के बीच से निकालकर मंत्रीजी के पास ले आए।

''हुजूर, हमरो मरद और दुई बच्चा गौरीकुंड में लापता होन छ, कस्तो बी ठौर ठिकाणो छई ना'' मंत्रीजी के नजदीक पहुँचते ही टेपरिकॉर्डर की तरह बिना किसी के कुछ पूछे उसने वही बात दोहराई।

''किस गाँव की हो?'' मंत्रीजी ने पूछा।

''हुजूर, नेपाल की।'' उसने फिर दोहराया।

अपने बगल में खड़े अफसरों से मंत्रीजी ने धीमी आवाज में कुछ कहा, जो धनमति ने नहीं सुना। फिर वे उसी अफसर की तरफ इशारा करते हुए धनमति से बोले, जिसने उसे खोखे से भाग जाने को कहा था।

''ठीक है, इनसे मिल लेना, ये तुम्हें नेपाल भेजने की व्यवस्था कर देंगे।'' कहकर मंत्रीजी आगे निकल गए। धनमति सन्न रह गई, उसकी उम्मीदें चूर-चूर हो गईं। अपने जीवन के बारह कीमती वर्ष यहाँ गुजारने के बाद अब वह नेपाल कहाँ और किसके पास जाएगी, उसे तो यह भी नहीं मालूम कि नेपाल किस दिशा में है और वहाँ जाने का रास्ता किधर से है? वहाँ उसके परिवार में कोई है भी या नहीं, कोई उसे पनाह देता भी है या नहीं? विचारों में खोई अवाक् खड़ी धनमति दूर भीड़ के बीच जाते हुए मंत्रीजी को अपलक देखती रह गई।

सारे बाजार में सन्नाटा पसर गया। मंत्रीजी जा चुके थे और अब धनमति अपने व अपने बच्चे के भविष्य की चिंता लेकर वापस सब्जी के उसी खाली खोखे की ओर बढ़ रही थी।

□□□